सोनगढ़. दि० जैन स्वाध्याय मंदिर

ट्रस्ट द्वारा वीर विद्यामंदिर

को भेंट

ता. १५-८-६६

श्री सेठी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० १

श्री जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला

प्रथम भाग (चतुर्थ आवृत्ति)
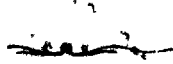
अनुवादक—

श्री मगनलाल जैन

प्रकाशकः—

श्री सेठी दि० जैन ग्रन्थमाला

अंतर्गत—मीठालाल महेन्द्रकुमार सेठी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट

६२, धनजी स्ट्रीट मुम्बई नं० ३

★

मिलनेका पता—

श्री० दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

दूसरा संस्करण वीर नि० सं० २४८४

प्रति १०००

तीसरा संस्करण-वीर नि० सं० २४८७

प्रति २२००

चतुर्थ संस्करण वीर सं० २४८६

प्रति ३०००

जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला भाग १-२-३

मिलने का पता—दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रथम भाग मूल्य ६० नये पैसे

मुद्रक:— मूलचन्द बाकलीवाल

श्री जैन आर्ट प्रिंटर्स, नया बाजार अजमेर

अर्पण

परम कृपालु पूज्य

आत्मार्थी सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के

कर कमल में

आप हमारे आत्मश्रेय के लिये प्रतिवर्ष प्रौढ़ जैन शिक्षणवर्ग के आयोजन की प्रेरणा दे रहे हैं; उसके द्वारा अभ्यासियों को जो बोध प्राप्त होता है, तथा आत्मार्थियों के लिये पूर्वापर विरोधरहित, न्यायसंपन्न वीतरागविज्ञान पूर्ण मोक्षमार्ग निरन्तर प्रवचनों द्वारा दरशा रहे हैं, उन सबके सत्स्वरूप, आत्म हितकारी प्रश्नोंके पुष्प चुनकर, आदरणीय श्री रामजी भाई आदि मुमुक्षु सज्जनों ने श्रम तथा उमंग पूर्वक गूंथी हुई यह पुष्पमाला हम आपके कर कमल में अर्पित करके कृतकृत्य हो रहे हैं !!

हम हैं:—

प्रौढ़ शिक्षणवर्ग के अभ्यासी

मुख्य विषय

इन प्रकरणों के गौण विषयों की अनुक्रमणिका तथा आधारभूत ग्रन्थों की सूची आगे दी गई है।

निवेदन

जब कि मैं सावन मास सं० २०१३ में प्रौढ़ शिक्षणवर्ग में अभ्यास करनेके लिये सोनगढ़ गया था और वर्गमें अभ्यास करता था उस समय अभ्यासियोंको पूछे जाने वाले प्रश्नोंको जिसप्रकार सुन्दर रीति से समझाया जाता था वह प्रश्नोत्तरकी शैली समझकर मेरे हृदयमें यह भाव जागृत हुआ कि अगर ये प्रश्नोत्तर भले प्रकारसे संकलन करके स्कूल एवं पाठशालाओंमें जैनधर्मकी शिक्षा लेनेवाले शिक्षार्थियों को सुलभ कर दिये जावें तो सत् धर्मकी भले प्रकारसे प्रभावना हो और बहुत लोगों को लाभ मिल सके। यह भाव जागृत हुये थे कि मालुम हुआ श्रद्धेय वयोवृद्ध श्री रामजी भाई माणकचन्दजी दोशी संपादक आत्मधर्म एवं प्रमुख श्री जैन स्वा० मंदिरने बहुत प्रयास करके लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका के प्रश्नों पर सर्वांग सुन्दर पुस्तिका गुजरातीमें तैयारकी है और वह बहुत अच्छी तात्त्विक पुस्तक है यह पढ़कर मुझे बहुत हर्ष हुआ और मैंने उसको हिन्दी अनुवाद करनेके लिये भेज दिया। इसी समय मेरा यह भाव जागृत हुआ कि एक ग्रंथमाला चालू की जावे जिसका नाम सेठी दि० जैन ग्रंथमाला हो तथा वह भलेप्रकारसे आगामी भी चलती रहे। उसके लिये मैंने मेरे पूज्य श्री पिताजीकी आज्ञानुसार एक ट्रस्ट बनानेका निर्णय किया जिसका नाम श्री मीठालाल महेन्द्रकुमार सेठी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट रखा। उसी ट्रस्टके अंतर्गत यह सेठी दि० जैन ग्रंथमाला चालू की है जिसके पुष्प नं० १-२-३ के रूपमें जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर मालाके तीनों भाग प्रकाशित हुये हैं। प्रथम भाग छपते ही तुरन्त बिक गया और उसकी जोरोंसे मांग चालू है अतः दूसरी आवृत्ति छपाई है।

इसके प्रथम भागमें द्रव्य, गुण, पर्याय तथा अभाव इन चार विषयोंसे सम्बन्धित अनेक प्रकार के प्रश्न उठाकर उनके आगम न्याय युक्ति एवं स्वानुभव सहित बहुत ही सुन्दर विस्तृत उत्तर दिये हैं—

दूसरे भागमें छह कारक, निमित्त उपादान तथा सात तत्त्व और नव पदार्थोंका बहुत सुन्दर प्रश्नोत्तर रूपमें विवेचन आवेगा तथा तीसरे भागमें प्रमाण नय निक्षेप, अनेकान्त और स्याद्वाद तथा मोक्षमार्ग के ऊपर सर्वज्ञ वीतराग मार्गके सुसंगत यथार्थ पूर्वक और शास्त्राधार सहित बहुत विशद विवेचन है। इसप्रकार ये तीनों भागोंकी उपयोगिता तो आपको इस प्रथमभागके पढ़नेसे ही ज्ञात हो जावेगी इतनी बड़ी विशद पुस्तकको ३ भागमें छपानेका मेरा खास उद्देश्य यही है कि जैन समाजकी शिक्षण संस्थाऐं इन पुस्तकोंको धर्मकी शिक्षाके लिये कक्षाओंमें काम ले सकें तथा अलग अलग विषयों पर मनन करनेके लिये अभ्यासियों को अलग अलग पुस्तक रखनेमें सुगमता हो।

अतः मेरी अभिलाषा सफल हुई तो अपना प्रयास सफल समझूंगा। इस कार्यके पूरा करनेमें भाई श्री नेमीचन्दजी पाटनी किशनगढ़ वाले, भाई श्री हरिलालजी जीवराजजी भायाणी भावनगर वालोंने एवं ब्रह्मचारी भाई श्रीगुलाबचन्दजी सोनगढ़वालोंने बहुत मेहनत की है उसके लिये मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

जैन जैनेतर जिज्ञासु समाजने इस प्रकाशनका बहुत अच्छी तरह लाभ लिया है और अनेक पाठशालाओं द्वाराभी इसकी मांग चालू ही है अतः इस समय २२०० प्रति प्रकाशित करनेकी सूचना मिलीहै एतदर्थ उन सब सज्जनोंका आभार मानता हूँ।

निवेदक—

महेन्द्रकुमार सेठी

प्रस्तावना

वि० सं० २०१० के श्रावण महीनेमें भी प्रति वर्षकी भाँति प्रौढ़ जैन शिक्षणवर्गका आयोजन हुआ था। उस समय अध्ययनमें "श्री लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका" तथा "श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक" का नववां अधिकार जैन धार्मिक शिक्षणके रूप में रखा गया था।

वर्ग में जिन विषयों का अभ्यास कराया जाता था तत्सम्बन्धी अनेक प्रश्न पाठशालाके अध्यापक श्री हीराचंद भाई ने अभ्यासियों-को लिखाये थे; तथा विद्यार्थियोंने प्रश्न तैयार किये थे। शिक्षण वर्गकी समाप्तिके समय उन प्रश्नोंको व्यवस्थितरूप से संकलित कर-के उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित कराने का विचार हुआ था; उसीके फलस्वरूप यह पुस्तक प्रकाशित हुई है।

इस पुस्तकमें मुख्य उपयोगी प्रश्न और उनके अनुशीलन में जो जो नये उपयोगी प्रश्न उद्भूत हुए उन सबका उत्तर सहित समावेश किया गया है। तथा उन प्रश्नों का प्रकरणानुसार वर्गीकरण करके मालारूप गूंथकर "श्री जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला" के नाम से आज मुमुक्षुओं के हाथोंमें देते हुए हर्ष हो रहा है। इस माला में प्राथमिक अभ्यासियों को—मुख्यत: तत्त्व के जिज्ञासुओं को अध्ययन के लिये जो जो विषय अत्युपयोगी हों वे सभी-**द्रव्य-गुण-पर्याय, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, द्रव्य के सामान्य तथा विशेष गुण, चार अभाव, कर्ता-कर्म आदि छह कारक, उपादान-निमित्त, निमित्त-नैमित्तिक, निश्चय-व्यवहार, सात तत्त्व, नव पदार्थ, प्रमाण-नय-निक्षेप, अनेकान्त-स्याद्वाद, मोक्षमार्ग, गुणस्थान, सर्वज्ञ आदि** लिये गये हैं।

[१] शास्त्रों के अर्थ की रीतिः—

आजकल मुख्यतः जैन शास्त्रोंका अर्थ करनेके सम्बन्धमें अत्यन्त अज्ञान वर्त रहा है; इसलिये तत्सम्बन्धी कुछ स्पष्टता करने की आवश्यकता है। इसका स्पष्टीकरण श्री प्रवचनसारकी २६८वीं गाथामें किया गया है; उसमें दिये गये अर्थका तत्सम्बन्धी भाव निम्नानुसार है:—

जिसने शब्द ब्रह्मका और उसके वाच्यरूप समस्त पदार्थों का निश्चयनय से निर्णय किया हो वह जीव संयत है।

उपरोक्त टीकामें श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने स्पष्ट बतलाया है कि शास्त्रमें निश्चयनयका कथन हो या व्यवहार नयका—उस सर्व में निश्चयनयानुसार ही अर्थ करना।

व्यवहारनय सत्य स्वरूपका निरूपण नहीं करता, किन्तु किसी अपेक्षासे उपचारसे अन्यथा निरूपण करता है वह संयोग, निमित्तादि का ज्ञान करानेके लिये होता है। यदि व्यवहारनयके कथनका अर्थ उसके शब्दानुसार ही किया जाये तो निश्चय और व्यवहारके कथन परस्पर विरुद्ध होनेसे विरोध उत्पन्न होगा; किन्तु वीतरागी कथनमें किसी स्थान पर विरोध हो ही नहीं सकता, इसलिये वह विरोध मिटानेके लिये व्यवहारनयके कथनका अर्थ **"ऐसा नहीं है किन्तु निमित्तादिकी अपेक्षा से यह उपचार किया है"—ऐसा समझना**। इस सम्बन्ध में श्री टोडरमलजीने मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रन्थमें निम्नोक्त शब्दोंमें स्पष्ट कहा है:—

प्रश्न:—तो क्या करें? [तो नय में क्या समझें?]

उत्तर:—निश्चयनय द्वारा जो निरूपण किया हो उसे तो सत्यार्थ

मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना तथा व्यवहारनय द्वारा जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना चाहिए।

श्री समयसार टीकामें भी श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने यही कहा है कि:—

(शार्दूल विक्रीड़ित)

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं, त्याज्यं यदुक्तं जिनै—
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।
सम्यङ् निश्चयमेकमेव तदमी, निष्कंपमाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे,बध्नंति संतो धृतिम्॥१७३॥

अर्थ:—सर्व वस्तुओंमें जो अध्यवसान होते हैं, वे सभी (अध्यवसान) जिन भगवन्तोंने पूर्वोक्त रीति से त्यागने योग्य कहे हैं, इसलिये हम ऐसा मानते हैं कि "पर जिसका आश्रय है ऐसा व्यवहार ही सारा छुड़ाया है।" तो फिर, यह सत्पुरुष एक सम्यग्निश्चयको ही निष्कंपरूपसे अंगीकार करके शुद्ध ज्ञानघनस्वरूप निज महिमा में (आत्मस्वरूप में) स्थिरता क्यों नहीं धरते ?

भावार्थ:—यहाँ व्यवहारका तो त्याग कराया है, इसलिये निश्चयका अंगीकार करके निजमहिमारूप प्रवर्तन करना युक्त है। पुनश्च; **श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव ने श्री मोक्षप्राभृत में** कहा है कि—

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे ॥३१॥

अर्थ:—जो व्यवहारमें सोते हैं वे योगी अपने (आत्मधर्मरूप)

कार्यमें जागते हैं, तथा जो व्यवहारमें जागते हैं वे अपने कार्यमें सोते हैं ।

इसलिये व्यवहारनयका श्रद्धान छोड़कर निश्चयनयका श्रद्धान करना योग्य है, व्यवहारनय स्वद्रव्य-परद्रव्य को तथा उनके भावों को तथा कारण–कार्यादि को किसीके किसीमें मिलाकर निरूपण करता है; और ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व है, इसलिये उसका त्याग करना चाहिये; और निश्चयनय उन्हीं का यथावत् निरूपण करता है तथा किसीको किसीमें नहीं मिलाता; और ऐसे ही श्रद्धानसे सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना चाहिये ।

प्रश्न—यदि ऐसा है तो जिनमार्गमें दोनों नयोंका ग्रहण करने को कहा है उसका क्या कारण है ?

उत्तर:—जिनमार्गमें किसी स्थान पर तो निश्चयकी मुख्यता सहित व्याख्यान है उसे तो "सत्यार्थ—ऐसा ही है"—ऐसा जानना चाहिये, तथा किसी स्थान पर व्यवहारनयकी मुख्यता सहित व्याख्यान है उसे "ऐसा नहीं है, किंतु निमित्तादि की अपेक्षासे यह उपचार किया है"–ऐसा जानना चाहिये । इसप्रकार जाननेका नाम ही दोनों नयोंका ग्रहण है । किन्तु दोनों नयोंके व्याख्यानको समान सत्यार्थ जानकर "इसप्रकार भी है तथा इसप्रकार भी है"—ऐसे भ्रमरूप प्रवर्तनसे तो दोनों नय ग्रहण करनेको नहीं कहा है ।

प्रश्न—यदि व्यवहारनय असत्यार्थ है तो जिनमार्गमें उसका उपदेश किसलिए दिया ? एक निश्चयका ही निरूपण करना था ?

उत्तर—ऐसा ही तर्क श्री समयसारमें किया है; वहाँ उत्तर दिया है कि:—

जह णवि सक्कमणज्जो श्रणज्जभासं विणा उ गाहेउं ।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं ॥८॥

अर्थः—जिसप्रकार किसी अनार्य म्लेच्छको म्लेच्छ भाषाके बिना अर्थ ग्रहण करानेमें कोई समर्थ नहीं है, उसीप्रकार व्यवहारके बिना परमार्थका उपदेश देना अशक्य है, इसलिये व्यवहारका उपदेश है

श्रौर उसी सूत्रकी व्याख्यामें कहा है किः—

एवं म्लेच्छस्थानीयत्वाज्जगतो व्यवहारनयोऽपि म्लेच्छ भाषास्थानीयत्वेन परमार्थप्रतिपादकत्वादुपन्यसनीयः अथ च ब्राह्मणो न म्लेच्छितव्य इति वचनाद्व्यवहारनयो नानुसर्त्तव्यः ॥

—इसप्रकार निश्चयको श्रंगीकार करानेके लिये व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं किंतु व्यवहारनय है वह श्रंगीकार करने योग्य नहीं है।

पुनश्च, श्री **कुन्दकुन्दाचार्य रचित श्री समयसार** की टीका में श्री जयसेनाचार्यने तथा श्री योगीन्द्रदेव रचित **श्री परमात्मप्रकाश** की टीकामें श्रीब्रह्मदेवजीने शास्त्रोंका अर्थ करनेकी पद्धति दर्शायी है, जो इस नामकी पुस्तकके भाग ३—प्रकरण श्राठवांके प्रश्न नं० ८५—८६ में है पृष्ठ २१-२२-२३ पर है। उसमें भी प्रत्येक प्रसंग पर जिस नयका कथन हो उसका निर्णय करके यथार्थ अर्थ करना चाहिये। (श्राठवाँ प्रकरण क्रमशः छपेगा उसमें शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, श्रागमार्थ श्रौर भावार्थके स्वरूपमें श्राचार्योंने क्या कहा है वह भी श्रायेंगे।)

(२) अभाव :—

इस प्रश्नोत्तर मालामें श्रभाव नामका प्रकरण श्रलग रखा गया है, उसका श्रभ्यास करनेसे ज्ञात होगा कि एक वस्तुका दूसरी वस्तु

में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे अभाव होनेके कारण दूसरेका कुछ भी नहीं किया जा सकता; और ऐसा निर्णय किये बिना अनादिसे चली आ रही परद्रव्यकी कर्ताबुद्धि दूर नहीं होती। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध व्यवहार सम्बन्ध है। निमित्त—नैमित्तिकका परमार्थ अर्थयह होता है कि—नैमित्तिकने स्वयं अपनेसे कार्य किया उसमें निमित्तने कुछ भी नहीं किया है; अर्थात् निमित्त है अवश्य किंतु उसने नैमित्तिक का कुछ भी किया नहीं है—ऐसा निर्णय न किया जाये तो एक द्रव्य—का दूसरे द्रव्यमें अभाव होना वास्तवमें माना नहीं कहा जा सकता।

इस प्रस्तावनामें मुख्य २ विषयों सम्बन्धी योग्य मार्गदर्शन स्पष्टतापूर्वक संक्षेपमें किया गया है। इतना दर्शानेके पश्चात् नम्र आग्रह है कि—मात्र यह प्रश्नोत्तर माला पढ़ लेनेसे तत्त्वका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता; इसलिये उसका यथार्थ ज्ञान करने के लिये ज्ञानियोंका प्रत्यक्ष उपदेश सुनना चाहिये। जिज्ञासुओंको सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक व्याख्यानोंका अवश्य लाभ लेना चाहिये। ऐसा लाभ लेना आत्माके लिये विशेष लाभका कारण होगा।

आभार दर्शनः—

यह पुस्तक तैयार करनेमें ब्र० गुलाबचन्द जैन आदि जिन जिन स्वधर्मी बन्धुओंने सहयोग दिया है उन सबका आभार मानता हूँ।

सोनगढ़
वीर सं० २४८३
पौष बदी १४

रामजी माणेकचन्द दोशी
प्रमुख—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

तीसरी आवृत्तिकी प्रस्तावना

यह पुस्तक पाठकोंको इतनी अधिक पसंद आयी जो छपते ही दोनों आवृत्तियाँ बिक गयीं, व बहुत दिनोंसे उसकी जोरोंसे मांग चालू है, इसलिये विचारवान जिज्ञासुओंके लाभार्थ यह तीसरी आवृत्ति सेठीजोने छपाई है। जो प्रयोजनभूत तात्त्विक बात वीतरागमार्गसे सुसंगत नयार्थ और शास्त्राधार सहित होनेसे जैन धर्मकी प्रभावनामें सहायभूत है।

सोनगढ़
वीर नि० सं०
२४८७

रामजी माणेकचन्द दोशी
प्रमुख—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

चतुर्थ आवृत्तिकी प्रस्तावना

धर्म जिज्ञासुओंको यह पुस्तक इतनी पसंद आयी है कि मध्यस्थतासे पढ़नेवालोंने अच्छी तरह लाभ लिया और प्रचार बढता ही रहा। जैन पाठशाला और स्वाध्यायशालाओंमें ये तीनों भाग चलते हैं। थोड़े ही समयमें ये तीनबार छप चुके हैं। प्रयोजनभूत बात समझनेके इच्छुक जैन—जैनेत्तर समाजकी ओरसे इसकी मांग चालू है अतः यह चतुर्थ आवृत्ति छपी है। प्रार्थना है कि अपूर्व आत्मकल्याण की भावनापूर्वक इस ग्रन्थ द्वारा सर्वज्ञ वीतराग कथित यथार्थता, स्वतंत्रता और वीतरागताका

ज्ञान करने का प्रयत्न सब जिज्ञासुओं करें

ब्र० गुलाबचंद जैन

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
वीर निर्वाण सं० २४६०

प्रश्न-सूची

[आ]

[इ]

[उ]

[ग]

[घ]

[च]

[छ]

[ज]

[ज्ञ]

[त]

[द]

(ध)

(न)

(प)

[ब]

[भ]

(म)

[य]

[र]

[ल]

[व]

* श्री वीतरागाय नमः *

श्री जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला

* मंगलाचरण *

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं, ज्ञानादन्यत करोति किम् ?
परभावस्य कर्तात्मा, मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ॥

अज्ञानतिमिरान्धानाम्, ज्ञानाञ्जन शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

प्रकरण पहला

(१) द्रव्य अधिकार

प्रश्न (१)—विश्व* किसे कहते है ?

उत्तर:—छह द्रव्योंके समूहको विश्व कहते हैं।

प्रश्न (२)—द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—गुणोंके समूहको द्रव्य कहते हैं।

प्रश्न (३)—गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर:—जो द्रव्यके पूर्ण भागमे और उसकी सर्व अवस्थाओमे रहे उसे गुण कहते है।

प्रश्न (४)—छह द्रव्योंके नाम क्या हैं ?

उत्तर—जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल।

प्रश्न (५)—जीव द्रव्य किसे कहते है ?

उत्तर:—जिसमें चेतना अर्थात् ज्ञान-दर्शनरूप शक्ति हो उसे जीव द्रव्य कहते हैं।

प्रश्न (६)—पुद्गल* द्रव्य किसे कहते है ?

---

* विश्व=समस्त पदार्थ—द्रव्य-गुण-पर्याय।

(श्री प्रवचनसार गाथा १२४ की फुटनोट)

* पुद्गल शब्दका निरुक्ति अर्थ:—

पुद् + गल=पूरयन्ति गलयन्ति इति पुद्गलाः।

(जैन सि० दर्पण)

जो पूरें-एकत्रित हों और पृथक हों वे पुद्गल।

उत्तरः—जिसमें स्पर्श रस, गंध और वर्ण—यह गुण हों उसे पुद्गल कहते हैं।

प्रश्न (७)—पुद्गलके कितने भेद हैं?

उत्तरः—दो भेद है—एक परमाणु और दूसरा स्कंध।

प्रश्न (८)—परमाणु किसे कहते हैं?

उत्तरः—जिसका दूसरा कोई भाग न हो सके ऐसे छोटेसे छोटे पुद्गलको परमाणु कहते है।

प्रश्न (९)—स्कंध किसे कहते हे?

उत्तरः—दो अथवा दो से अधिक परमाणुओंके बंधको स्कंध कहते हैं।

प्रश्न (१०)—धर्म द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तरः—जो स्वयं गमन करते हुए जीव और पुद्गलोंको गमन करने में निमित्त हो उसे धर्म द्रव्य कहते हैं। जैसे—स्वयं गमन करती हुई मछलीको गमन करनेमें पानी।

प्रश्न (११)—अधर्म द्रव्य किसे कहते हे?

उत्तरः—जो स्वयं गतिपूर्वक स्थितिरूप परिणमित जीव और पुद्गल को स्थिर रहनेमें निमित्त हो उसे अधर्म द्रव्य कहते हे। जैसे—पथिकको स्थिर रहनेमें वृक्षकी छाया।

प्रश्न (१२)—अधर्म द्रव्यकी व्याख्यामें कहा है कि जो "गतिपूर्वक स्थिति" करे उसे अधर्म द्रव्य निमित्त है; उसमेंसे यदि "गति पूर्वक" शब्दको निकाल दें तो क्या दोष आयेगा?

उत्तरः—जो गतिपूर्वक स्थिति करें ऐसे जोव—पुद्गलको ही अधर्म द्रव्य स्थितिमें निमित्त है—ऐसी मर्यादा न रहनेसे सदैव स्थिर रहनेवाले धर्मास्तिकाय, आकाश और काल द्रव्योंको भी स्थिति में अधर्म द्रव्यका निमित्तपना आ जायेगा।

प्रश्न (१३)—आकाश द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर:—जो जीवादिक पांच द्रव्योंको रहनेका स्थान देता है उसे आकाश द्रव्य कहते हैं।

प्रश्न (१४) आकाशके कितने भेद हैं ?

उत्तर:—आकाश एक ही अखण्ड द्रव्य है; किन्तु उसमें धर्म-अधर्म द्रव्य स्थित होनेसे (आकाशके) दो भेद हैं—लोकाकाश और अलोकाकाश।

यदि लोकमें धर्म–अधर्म द्रव्य न होते तो लोक–अलोक ऐसे भेद ही नही होते।

(पंचास्तिकाय गाथा ८७ की टीका)

प्रश्न (१५)—लोकाकाश किसे कहते हैं ?

उत्तर:—जिसमे जीवादिक सर्व द्रव्य होते है उसे लोकाकाश कहते है। अर्थात् जहाँ तक जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल–यह पांच द्रव्य है वहाँ तकके आकाशको लोकाकाश कहते है।

प्रश्न (१६)—अलोकाकाश किसे कहते हैं ?

उत्तर:—लोकाकाशके बाहर जो अनन्त आकाश है—उसे अलोकाकाश कहते हैं।

प्रश्न (१७)—लोकाकाश और अलोकाकाश–इन दोनोंके रंगमें क्या अन्तर है ? दोनोंमें कौन बड़ा है ?

उत्तर—आकाश द्रव्य अरूपी* होनेसे उसके रंग नही होता। आकाश एक अखण्ड द्रव्य है। जितने भागमें छह द्रव्योंका समूह है उतने भागको लोकाकाश कहते है। वह छोटा भाग है

---

* जो स्पर्श, रस, गंध और वर्ण रहित हो वह अरूपी है।

और शेष चारों ओर अलोकाकाश है, वह लोकाकाशसे अनन्त गुना है ।

प्रश्न (१८)–अलोकाकाशमें कितने द्रव्य हैं और उसके परिणमनमें किसका निमित्त है ?

उत्तर—अलोकाकाशमें आकाशके अतिरिक्त अन्य कोई द्रव्य नहीं हैं । सम्पूर्ण आकाश द्रव्यके परिणमनमें लोकाकाशमें विद्यमान कालाणु द्रव्य निमित्त हैं ।

प्रश्न (१९)–एक आकाशप्रदेशमें एक ही प्रकारके दो द्रव्य कभी साथ नहीं रहते; उस द्रव्यका नाम क्या ?

उत्तर—कालाणु द्रव्य; क्योंकि प्रत्येक कालाणु द्रव्य लोकाकाशके एक–एक प्रदेशमें रत्नराशिके समान एक–एक भिन्न–भिन्न ही रहता है ।

प्रश्न (२०)–एक परमाणु जितना छोटा दूसरा कोई द्रव्य है ?

उत्तर—हाँ, कालाणु; क्योंकि परमाणु और कालाणु एक प्रदेशी द्रव्य है ।

प्रश्न (२१)–प्रदेश किसे कहते हैं ?

उत्तर–एक पुद्गल परमाणु आकाशका जितना स्थान रोके उतने भागको प्रदेश कहते हैं । उस एक प्रदेश द्वारा सर्व द्रव्योंके क्षेत्रका नाप निश्चित् किया जाता है ।

प्रश्न (२२)–काल द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो अपनी–अपनी अवस्थारूप स्वयं परिणमित होनेवाले जीवादिक द्रव्योंको परिणमनमें निमित्त हो उसे काल द्रव्य कहते हैं; जैसे कुम्हारके चाकको घूमनेमें लोहेकी कीली ।

प्रश्न (२३)–कालके कितने भेद हैं ?

उत्तर:—दो भेद हैं—निश्चयकाल और व्यवहारकाल।

प्रश्न (२४)–निश्चयकाल किसे कहते हैं?

उत्तर—कालद्रव्यको निश्चयकाल कहते हैं। लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं उतने ही कालद्रव्य हैं और लोकाकाशके एक–एक प्रदेश पर एक–एक कालद्रव्य (कालाणु) स्थित है।

प्रश्न (२५)–व्यवहारकाल किसे कहते हैं?

उत्तर—कालद्रव्यकी समय, पल, घड़ी, दिवस, महीना, वर्ष आदि पर्यायोंको व्यवहार काल कहते हैं।

प्रश्न (२६)–जीवादिक द्रव्य कितने–कितने हैं? और वे कहाँ रहते हैं?

उत्तर—जीव द्रव्य अनंत हैं और वे सम्पूर्ण लोकाकाशमें विद्यमान हैं। जीवद्रव्यसे अनंतगुने पुद्‌गल द्रव्य हैं और वे सम्पूर्ण लोकाकाश में भरे हैं। धर्म और अधर्म द्रव्य एक–एक हैं और वह संपूर्ण लोकमें व्याप्त हैं। आकाश द्रव्य एक है और वह लोक तथा अलोकमें व्याप्त है। कालद्रव्य असंख्यात हैं और वे लोकाकाश में (प्रत्येक प्रदेशमें एक–एक इस प्रकार) व्याप्त है।

प्रश्न (२७)–अस्तिकाय किसे कहते हैं?

उत्तर—बहुप्रदेशी द्रव्यको अस्तिकाय कहते है।

प्रश्न (२८)–कितने द्रव्य अस्तिकाय हैं?

उत्तर—जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म और आकाश–यह पाँच द्रव्य "अस्तिकाय" हैं।

प्रश्न (२९)–कालद्रव्य अस्तिकाय क्यों नही है?

उत्तर—कालद्रव्य एक प्रदेशी है, इसलिये वह अस्तिकाय नहीं है।

प्रश्न(३०)-पुद्‌गल परमाणु भी एकप्रदेशी है, तो वह अस्तिकाय कैसे हुआ?

उत्तर—यद्यपि पुद्‌गल परमाणु एक प्रदेशी है, किन्तु उसमे स्कन्ध-

रूप बनकर बहुप्रदेशी होनेकी शक्ति है; इसलिये उसे उपचारसे अस्तिकाय कहा जाता है।

प्रश्न (३१)–जीवादि छह द्रव्योंमें दो भेद किसप्रकार करेंगे ?

उत्तर—(१) जीव, अजीव; (२) रूपी, अरूपी; (३) क्रियावती* शक्ति और भाववती शक्तिवाले; (४) बहु प्रदेशी और एक प्रदेशी।

प्रश्न (३२)–अजीव द्रव्य कौनसे है ?

उत्तर—पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल।

प्रश्न (३३)–रूपीका अर्थ क्या ? और अरूपीका क्या ?

उत्तर—जो स्पर्श, रस, गंध और वर्णसहित हो वह रूपी और जो उनसे रहित हो वह अरूपी।

प्रश्न (३४)–छह द्रव्योंमें रूपी कौन हैं और अरूपी कौन ?

उत्तर—एक पुद्गल द्रव्य रूपी है और शेष पाँच अरूपी।

प्रश्न (३५)–आत्माको प्रदेशरूपी असंख्य अवयव माननेसे उसके खण्ड होंगे या नहीं ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि आत्मा क्षेत्र द्वारा अखण्डित होनेके कारण उसके खण्ड नहीं हो सकते।

(पंचाध्यायी भाग १, गाथा ४१४)

प्रश्न (३६)–जीव, पुद्गल, आकाश और काल को दो–दो भेदोंमें रखो।

उत्तर—(१)–जीव—संसारी और सिद्ध।

(२) पुद्गल—परमाणु और स्कन्ध।

(३) आकाश—लोकाकाश और अलोकाकाश।

---

* देखो प्रश्न ५२ वाँ।

(४) काल—निश्चयकाल और व्यवहारकाल।

प्रश्न (३७)–जगतमें क्षेत्रकी अपेक्षा सबसे बड़ा कौन है ?

उत्तर—आकाश द्रव्य।

प्रश्न (३८)–आत्मा (जीव) के शरीर होता है ? हो तो कैसा होता है ?

उत्तर—नित्य चैतन्यमय अनंतगुणोंका समूह (श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, सुखादि गुणोंका समाज) वह आत्माका वास्तविक शरीर है; इसलिये आत्माको "ज्ञान–शरीरी" कहते हैं। सयोगरूप जो जड़ शरीर है वह वास्तवमें आत्माका नही किन्तु पुद्‌गलका है और इसलिये जड़ शरीरको पुद्‌गलास्तिकाय कहा है।

प्रश्न (३९)–आत्माके अवयव होते हैं ? होते है तो कैसे ?

उत्तर—(१) प्रत्येक आत्माके उसके ज्ञानादि अनन्त गुण है और प्रत्येक गुण परमार्थतः आत्माका अवयव है, आत्मा उन अवयवोंवाला है। अवयवी है।

(२) क्षेत्र अपेक्षासे प्रत्येक आत्माके अपने अखण्ड असख्य प्रदेश हैं; उनमेंसे प्रत्येक प्रदेश आत्माका अवयव है; किन्तु जड़ शरीरके हाथ, पैर आदि जीवके अवयव नही हैं; वे तो जड़ शरीरके ही अवयव हैं।

प्रश्न (४०)–इस परसे क्या सिद्धान्त समझें ?

उत्तर—(१) जीव सदैव अरूपी होनेसे उसके अवयव भी सदैव अरूपी ही हैं, इसलिये किसी भी कालमें निश्चयसे या व्यवहार से हाथ, पैर आदिको चलाना, स्थिर रखना आदि पर द्रव्यकी कोई भी अवस्था जीव नहीं कर सकता—ऐसा निर्णय करना चाहिये।—इस प्रकार पदार्थोंकी स्वतन्त्रताका निर्णय करे

तभी जीव परसे भेद-विज्ञान करके ज्ञाता स्वभावकी श्रद्धा कर सकता है और ज्ञातारूप रह सकता है।

(२) शास्त्रोंमें आत्माको व्यवहारसे शरीरादिके कर्तृत्वका कथन आता है; उसका अर्थ—"ऐसा नहीं है किन्तु निमित्तकी अपेक्षासे यह उपचार किया है"—ऐसा समझना चाहिये।

(मोक्षमार्गप्रकाशक अ० ७ पत्र सं० ३६६ प्रकाशक सस्ती ग्रंथमाला देहली)

(३) निमित्तकी मुख्यतासे कथन आता है किन्तु निमित्तकी मुख्यतासे कार्य नहीं होता—ऐसा व्यवहार कथनका अभिप्राय जानना चाहिये।

प्रश्न (४१)—किसी द्रव्यके कितने प्रदेश हैं ?

उत्तर—जीव, धर्म, अधर्म और लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं; पुद्गलको संख्यात, असंख्यात और अनंत–इसप्रकार तीनों प्रकारके प्रदेश हैं; कालद्रव्य और पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी हैं। आकाश अनंत प्रदेशी है।

प्रश्न (४२)—प्रत्येक जीव कितना बड़ा है ?

—प्रत्येक जीव प्रदेशोंकी संख्या अपेक्षासे लोकाकाशके बराबर असंख्य प्रदेशवाला है, किन्तु संकोच-विस्तारके कारण वह अपने शरीर प्रमाण है, और मुक्त जीव अन्तिम शरीर प्रमाण; किन्तु वह शरीरसे किंचित् न्यून आकारका होता है।

प्रश्न (४३)—लोकाकाशके बराबर कौन जीव होता है ?

उत्तर—मोक्ष जानेसे पूर्व केवल समुद्घात* करनेवाला जीव लोकाकाशके बराबर बड़ा होता है।

---

* मूल शरीरको छोड़े बिना आत्माके प्रदेशोंका बाहर निकलना—उसे समुद्घात कहते हैं।

प्रश्न (४४)–जीव द्रव्य किस क्षेत्रमें कभी नहीं जाता ? और उसका कारण क्या ?

उत्तर—वह अलोकाकाशमें नहीं जाता, क्योंकि वह लोकका द्रव्य है।

प्रश्न (४५)–एक जीव कमसे कम स्थान ले तो वह लोकाकाशके कितने प्रदेश रोकेगा ?

उत्तर—जीवकी जघन्य अवगाहना भी असंख्य प्रदेशोंमें होती है। जीवकी अवगाहना संख्यात या एक प्रदेशी कभी नहीं होती।

प्रश्न (४६)–आकाशको अवगाहनमें कौन निमित्त है ?

उत्तर—वही स्वयंको अवगाहनमें निमित्त है।

प्रश्न (४७)–कालद्रव्य असंख्य है, उसे परिणमनमें कौन निमित्त है ?

उत्तर—वह स्वय ही अपनेको परिणमनमें निमित्त है।

प्रश्न (४८)–लोकाकाशकी सीमा बतलानेवाले कौनसे द्रव्य है ?

उत्तर—धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय।

प्रश्न (४९)–समस्त द्रव्योंको चेतन, अचेतन (जड)—ऐसे दो विभागोंमें रखिये।

उत्तर—चेतन मात्र जीव है और शेष पाँच द्रव्य अचेतन (जड़) हैं।

प्रश्न (५०)–अरूपी और अचेतन ऐसे कितने द्रव्य है ?

उत्तर—चार हैं–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल।

प्रश्न (५१)–आकाशके एक प्रदेशमें कितने परमाणु पृथक् और कितने स्कंध रह सकते हैं ?

उत्तर—(१) आकाशके एक प्रदेशमें सर्व परमाणुओंको स्थान देनेका सामर्थ्य है।

(२) सर्व परमाणुओं और सूक्ष्म स्कंधोंको अवकाश देनेमें वह एक प्रदेश समर्थ है।

(बृहत् द्रव्यसंग्रह गाथा २७ और उसकी टीका)

प्रश्न (५२)—छह द्रव्योंमें क्षेत्रांतररूप क्रियावती* शक्तिवाले कितने और परिणमनरूप भाववती शक्तिवाले कितने द्रव्य हैं ?

उत्तर—जीव और पुद्गल—यह दो द्रव्य क्षेत्रान्तर करनेकी शक्तिवाले होनेसे वे क्रियावती शक्तिवाले हैं, और छहों द्रव्य निरंतर परिणमनशील होनेसे भाववती शक्तिवाले हैं।

प्रश्न (५३)—अनंत पुद्गल परमाणु तथा सूक्ष्म स्कंध लोकाकाशके एक प्रदेशमें अवगाहना प्राप्त करें—एक प्रदेशको रोकें, तो एक-दूसरेको बाधा होगी या नहीं ?

उत्तर—नहीं; सर्व पदार्थोंको एक ही कालमें अवकाश-दान देनेका असाधारण गुण आकाशका है, तथा दूसरे सूक्ष्म पदार्थमें भी अवकाश-दान देनेका गुण है। एक आकाश प्रदेशमें अमर्यादित अवकाश दान शक्ति है।

प्रश्न (५४)—ऐसे कौनसे द्रव्य हैं कि जो मात्र क्रियावती शक्तिवाले द्रव्योंको ही निमित्त हों ?

उत्तर—जीव और पुद्गल द्रव्य ही क्रियावती शक्तिवाले, गति करनेवाले और गतिपूर्वक स्थिर होनेवाले द्रव्य हैं; उन्हें अनुक्रमसे धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय निमित्त हैं।

---

* जीव और पुद्गलमें क्रियावती शक्ति नामका गुण नित्य है। उस शक्तिके कारण वे दोनों द्रव्य उस समयकी योग्यतानुसार स्वतः गमन करते हैं या स्थिर रहते हैं। कोई द्रव्य (जीव या पुद्गल) एक-दूसरेको गमन या स्थिर नहीं करा सकता।

प्रश्न (५५)—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा अनन्तरूपसे किन-किनकी संख्या अधिक है ?

उत्तर—(१) द्रव्य अपेक्षासे पुद्गल परमाणु द्रव्योंकी संख्या सबसे बड़ी है। उनकी संख्या अनन्त जीवराशिसे अनंतानंत गुनी है।

(२) क्षेत्र अपेक्षासे त्रिकालवर्ती समयोंकी संख्यासे अनंतगुनी संख्या आकाश द्रव्यके प्रदेशोंकी है; इसलिये क्षेत्र अपेक्षासे आकाश द्रव्य सबसे बड़ा है।

(३) काल अपेक्षासे प्रत्येक द्रव्यके स्वकालरूप अनादि-अनंत पर्यायें पुद्गल द्रव्यकी संख्यासे अनन्तगुनी हैं। वे काल अपेक्षा-से अनंत हैं, अथवा भूतकालके अनंत समयोंकी अपेक्षा भविष्य कालके समयोंकी संख्या अनन्तगुनी अधिक है।

(४) भाव अपेक्षासे जीव द्रव्यके ज्ञानगुणके एक समयके केवलज्ञान पर्यायके अविभाग प्रतिच्छेदोंकी संख्या सबसे अनत-गुनी है; वह भाव अपेक्षासे अनंत है।

प्रश्न (५६)—इस परसे क्या समझना ?

उत्तर—केवलज्ञानमें त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थोंका सम्पूर्ण स्वरूप प्रत्येक समयमें सर्वप्रकारसे युगपत् (एकसाथ) स्पष्ट ज्ञात होता है;—ऐसी केवलज्ञानकी अचिन्त्य अपार शक्ति है, और प्रत्येक आत्माका शक्तिरूपसे ऐसा ही स्वभाव है।

प्रश्न (५७)—"अर्थ" किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्यों, गुणों और उनकी पर्यायोंको "अर्थ" नामसे कहा है। उनमें गुण-पर्यायोंका आत्मा द्रव्य है। (अर्थात् गुणों और पर्यायोंका स्वरूप—सत्व द्रव्य ही है, वे भिन्न वस्तु नहीं हैं) ऐसा जिनेन्द्रदेवका उपदेश है। (प्रवचनसार गाथा ८७)

"ऋ" धातुसे "अर्थ" शब्द बना है "ऋ" अर्थात् पाना, प्राप्त करना, पहुंचजाना। "अर्थ" अर्थात् जो पाये, प्राप्त करे, पहुंचे वह; अथवा जिसे पाया जाये; प्राप्त किया जाये—पहुंचा जाये वह।

जो गुणों और पर्यायोंको पायें–प्राप्त करें–पहुंचें, अथवा जो गुणों और पर्यायोंद्वारा पाये जायें–प्राप्त किये जायें–पहुँचे जायें ऐसे "अर्थ" वे द्रव्य हैं; जो द्रव्योंको आश्रयरूपसे पायें–प्राप्त करें–पहुंचें, अथवा जो आश्रयभूत द्रव्यों द्वारा पाये जायें–प्राप्त किये जायें–पहुंचे जायें ऐसे "अर्थ" वे गुण हैं; जो द्रव्यों-को क्रम परिणामसे पायें–प्राप्त करें–पहुंचें अथवा जो द्रव्यों द्वारा परिणामसे (क्रमशः होनेवाले परिणामसे) पाये जायें–प्राप्त किये जायें–पहुंचे जायें ऐसे "अर्थ" वे पर्यायें हैं।

(प्रवचनसार गाथा ८७ की टीका)

प्रश्न (५८)–उपरोक्तानुसार "अर्थकी" व्यवस्था परसे संक्षेपमें क्या समझें ?

उत्तर—अर्थ (पदार्थ) अर्थात् द्रव्य, गुण और पर्यायें,—इनके अतिरिक्त विश्वमें दूसरा कुछ नहीं है। और इन तीनमें, गुणों और पर्यायोंका आत्मा (उनका सर्वस्व) द्रव्य ही है। ऐसा होनेसे किसी द्रव्यके गुण और पर्यायें अन्य द्रव्यके गुणों और पर्यायोंरूप अंशतः भी नहीं होते; सर्व द्रव्य अपने–अपने गुण–पर्यायोंमें रहते हैं;—ऐसी पदार्थोंकी स्थिति मोहक्षयके निमित्त-भूत पवित्र जिनशास्त्रोंमें कही है।

(प्रवचनसार गा० ८७ का भावार्थ)

प्रश्न (५९)–लोकाकाशमें असंख्यात ही प्रदेश हैं, तो उसमें अनन्त प्रदेशी पुद्गल द्रव्य तथा अन्य द्रव्य भी कैसे रह सकेंगे ?

उत्तर—"पुद्गल द्रव्यमें दो प्रकारका परिणमन होता है—एक सूक्ष्म, दूसरा स्थूल। जब उसका सूक्ष्म परिणमन होता है तब लोकाकाशके एक प्रदेशमें भी अनन्तप्रदेशी पुद्गल स्कंध रह सकता है। पुनश्च, समस्त द्रव्योंमें एक दूसरेको अवगाहन देनेका सामर्थ्य है, इसलिये अल्पक्षेत्रमें ही सर्व द्रव्योंके रहनेमें कोई बाधा नहीं होती। आकाशमें समस्त द्रव्योंको एक ही साथ अवकाश-दान देनेका सामर्थ्य है; इसलिये एक प्रदेशमें अनंतानंत परमाणु रह सकते हैं; जिसप्रकार—किसी कमरेमें एक दीपकका प्रकाश रह सकता है और उसी कमरेमें उतने ही विस्तारमें पचास दीपकोंका प्रकाश रह सकता है, तदनुसार।

(मोक्षशास्त्र (हिन्दी), अध्याय ५, सूत्र १० की टीका)

प्रश्न (६०)—द्रव्यका लक्षण क्या है ?

उत्तर—(१) सद्द्रव्यलक्षणम्। (मोक्षशास्त्र अध्याय ५, सूत्र २९)

अर्थ—द्रव्यका लक्षण सत् (अस्तित्व) है।

विशेषार्थ :—

जिसके "है" पना (अस्तित्व) हो वह द्रव्य है। "अस्तित्व" गुण द्वारा "द्रव्य" को पहिचाना जा सकता है; इसलिये इस सूत्रमें 'सत्'को द्रव्यका लक्षण कहा है; जिसके—जिसके अस्तित्व हो वह—वह द्रव्य है—ऐसा यह सूत्र प्रतिपादन करता है।

सामान्य गुणोंमें 'सत्' (अस्तित्व) मुख्य हैं; क्योंकि उसके द्वारा वस्तुका (-द्रव्यका) अस्तित्व सिद्ध होता है। यदि द्रव्य हो तभी दूसरे गुण हो सकते हैं; इसलिये 'सत्'को यहाँ द्रव्यका लक्षण कहा है।

द्रव्य सत् है, इसलिये वह अपनेसे है—ऐसा 'सत्' लक्षण कहने-

से सिद्ध हुआ। उसका अर्थ यह हुआ कि वह स्व-रूपसे है और पर रूपसे नहीं है। इसप्रकार 'अनेकान्त' सिद्धांतसे यह सूत्र बतलाता है कि एक द्रव्य स्वयं अपना सब कुछ कर सकता है किन्तु दूसरे द्रव्य-का कभी कुछ नहीं कर सकता।

प्रत्येक द्रव्य "सत्" लक्षणवाला है, इसलिये वह स्वतः सिद्ध है। वह किसीकी अपेक्षा नहीं रखता वह-स्वतन्त्र है।

(देखिए मोक्षशास्त्र-गुजराती आवृत्ति-अ. ५ सूत्र २९ की टीका)

(२) एक द्रव्यमें भूत, वर्तमान और भविष्य सम्बन्धी जितनी गुणोंके परिणमनरूप अर्थपर्यायें तथा द्रव्यके आकारादि परि-णमनरूप व्यंजन पर्यायें हैं उतने मात्रको द्रव्य जानना; क्योंकि द्रव्य उनसे पृथक् नहीं है। अपनी त्रैकालिक सर्व पर्यायोंका समूह वह द्रव्य है।

(गोम्मटसार, जीवकांड गाथा ५८१)

प्रश्न (६१)—सत्का लक्षण क्या ?

उत्तर-(१) उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। (मोक्षशास्त्र अ.५, सू. ३०)

अर्थ—जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सहित हो वह सत् है।

उत्पाद-द्रव्यमें नवीन पर्यायकी उत्पत्तिको उत्पाद कहते हैं; जैसे कि-मिट्टीसे घड़ेका उत्पाद।

व्यय—पूर्व पर्यायके नाशको व्यय कहते हैं; जैसे-घट पर्यायका उत्पाद होनेपर मिट्टीकी पिंड पर्यायका व्यय।

ध्रौव्य-दोनों पर्यायोंमें (उत्पाद और व्ययमें) द्रव्यका सदृशतारूप स्थायी रहना उसे ध्रौव्य कहते हैं; जैसे कि-पिंड और घट पर्यायमें मिट्टीका नित्य स्थायी रहना।

(२)-द्रव्यका लक्षण सत् है; इसलिये उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य-इन

तीनोंसे युक्त सत् ही द्रव्यका लक्षण है। इन तीनोंसे युगपद् (एक ही समयमें) युक्त माननेसे ही सत् सिद्ध होता है। वस्तु स्वतः सिद्ध है; उसीप्रकार वे स्वतः परिणमनशील भी हैं; इसलिये यहाँ वह सत् नियमसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप है।

(देखिए, पंचाध्यायी भाग १, गाथा ८६–८६)

(३)–"प्रत्येक पदार्थमें पूर्व पर्यायका नाश होकर ही नवीन पर्यायका उत्पाद होता है; किन्तु ऐसा होने पर भी वह अपनी (प्रवाहरूप) धाराको नहीं छोड़ता। इससे ज्ञात होता है कि पदार्थ उत्पादादि त्रयात्मक है; किन्तु यहाँ उस उत्पाद और व्ययको भिन्न कालवर्ती न लेकर एक कालवर्ती (एक समयवर्ती) ही लेना चाहिये, क्योंकि पूर्व पर्यायके व्ययका जो समय है वही नवीन पर्यायके उत्पादका समय है। दूधका विनाश और दहीका उत्पाद भिन्नकालवर्ती नहीं है। इसप्रकार उत्पाद और व्यय एक कालवर्ती सिद्ध होनेसे सत् युगपत् उत्पादादि त्रयात्मक सिद्ध होता है.......

[पं० फूलचन्दजी सम्पादित पंचाध्यायी; अ० १ पृष्ठ २१, गाथा ८५ से ९६ का विशेषार्थ]

—(४) प्रत्येक द्रव्य सदैव स्वभावमें रहता है इसलिये "सत्" है। वह स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप परिणाम है। जिसप्रकार द्रव्यके विस्तारका छोटेसे छोटा अंश वह प्रदेश है, उसीप्रकार द्रव्यके प्रवाहका छोटेसे छोटा अंश वह परिणाम है। प्रत्येक परिणाम स्व-कालमें अपने रूपसे उत्पन्न होता है, पूर्वरूपसे विनष्ट होता है और सर्व परिणामोंमें एक प्रवाहपना होनेसे प्रत्येक परिणाम उत्पाद-व्यय रहित एकरूप ध्रुव रहता

है। और, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमें समय भेद नहीं है, तीनो ही एक समयमें हैं।—ऐसे उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यात्मक परिणामोंकी परम्परामें द्रव्य स्वभावसे ही सदैव रहता है, इसलिये द्रव्य स्वयं भी मोतियोंके हारकी भाँति उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यात्मक है।"

—[श्री प्रवचनसार गाथा ९९ का भावार्थ]

—(५) "बीज, अंकुर और वृक्षत्व—यह वृक्षके अंश हैं। बीज का नाश, अंकुरका उत्पाद और वृक्षत्वका ध्रौव्य (ध्रुवता) तीनों एक ही साथ हैं। इसप्रकार नाश बीजके आश्रित है उत्पाद अंकुरके आश्रित है और ध्रौव्य वृक्षत्वके आश्रित है। नाश-उत्पाद-ध्रौव्य-बीज-अंकुर-वृक्षत्वसे भिन्न पदार्थरूप नहीं है। और बीज-अंकुर-वृक्षत्व भी वृक्षसे भिन्न पदार्थरूप नहीं है; इसलिये वे सब एक वृक्ष ही है। इसीप्रकार नष्ट होनेवाला भाव, उत्पन्न होनेवाला भाव और स्थित रहनेवाला ध्रौव्यभाव वे सब द्रव्यके अंश हैं। नष्ट होनेवाले भावका नाश उत्पन्न होने वाले भावका उत्पाद और स्थित रहनेवाले स्थायी भावकी ध्रुवता एक ही साथ हैं। इसप्रकार नाश नष्ट होनेवाले भावके आश्रित है, उत्पाद उत्पन्न होनेवाले भावके आश्रित है और ध्रौव्य स्थित रहनेवाले भावके आश्रित है। नाश-उत्पाद-ध्रौव्य वे भावोंसे भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं; और वे भाव भी द्रव्यसे भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं; इसलिये यह सब एक द्रव्य ही है।"

[श्री प्रवचनसार गाथा १०१ का भावार्थ]

—(६) "इस सूत्रमें सत्‌का अनेकान्तपना बतलाया है। यद्यपि त्रिकाल अपेक्षासे सत् "ध्रुव" है तथापि प्रतिसमय

नवीन पर्याय उत्पन्न होती है और पुरानी पर्याय व्ययको प्राप्त होती है, अर्थात् द्रव्यमें समा जाती है, वर्तमानकालकी अपेक्षा अभावरूप होती है। इसप्रकार कथंचित् नित्यपना और कथंचित् अनित्यपना–वह द्रव्यका अनेकांतपना है।"

(मोक्षशास्त्र (हिन्दी) अ० ५, सू० ३० की टीका)

(७)–"इस सूत्रमें पर्यायका भी अनेकान्तपना बतलाया है उत्पाद वह अस्तिरूप पर्याय है और व्यय वह नास्तिरूप पर्याय है। अपनी पर्याय अपनेसे होती है और परसे नही होती–ऐसा "उत्पाद"से बतलाया है। अपनी पर्यायकी नास्ति–(अभाव) भी अपनेसे ही होती है, परसे नहीं होती। "प्रत्येक द्रव्यका उत्पाद और व्यय स्वतन्त्र उस–उस द्रव्यसे है।"–ऐसा बतलाकर द्रव्य, गुण तथा पर्यायकी स्वतन्त्रता प्रगट की–परका असहायकपना बतलाया।"

(मोक्षशास्त्र (हिन्दी) अ० ५, सूत्र ३० की टीका
–प्रकाशक जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ)

(८)–"धर्म (शुद्धता) आत्मामें द्रव्यरूपसे त्रिकाल भरपूर है; अनादिसे जीवको पर्यायरूपमें धर्म प्रगट नही हुआ, किन्तु जब जीव पर्यायमें धर्म व्यक्त करे तब वह व्यक्त होता है। इसप्रकार "उत्पाद" शब्दका उपयोग करके बतलाया और उसी समय विकारका व्यय होता है–ऐसा "व्यय" शब्दका भी उपयोग कर दिखाया। वह अविकारी भाव प्रगट होनेका और विकारी भाव जानेका लाभ–त्रिकाल स्थायी रहनेवाले ऐसे ध्रुव द्रव्यको प्राप्त होता है–इसप्रकार "ध्रौव्य" शब्दको अन्तिम रखा।"

(मोक्षशास्त्र (हिन्दी) अ० ५, सूत्र ३० की टीका)

प्रश्न (६२)—सत्, उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यरूप त्रयात्मक है।—इस कथनमें आध्यात्मिक रहस्य क्या भरा है?

उत्तर—"प्रत्येक द्रव्य एक समयमें अपने उत्पाद–व्यय–ध्रुवरूप त्रिस्वभावका स्पर्श करता है, उसी समय निमित्त होनेपर भी द्रव्य उनका स्पर्श नहीं करते। सम्यग्दर्शन हुआ वहाँ आत्मा उस सम्यग्दर्शनके उत्पादको, मिथ्यात्वके व्ययको और श्रद्धारूप अपनी ध्रुवताको स्पर्श करता है, किन्तु सम्यक्त्वके निमित्तभूत ऐसे देव, गुरु या शास्त्रको स्पर्श नही करता; वे तो भिन्नस्वभावी पदार्थ हैं। सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति, मिथ्यात्वका व्यय तथा श्रद्धापनेकी अखण्डतारूप ध्रुवता—इन तीनोंका आत्मामें ही समावेश होता है; किन्तु इनके अतिरिक्त जो बाह्य निमित्त हैं उनका समावेश आत्मामें नहीं होता। प्रतिसमय उत्पाद–व्यय–ध्रुवतारूप द्रव्यका अपना स्वभाव है और उस स्वभावका ही प्रत्येक द्रव्य स्पर्श करता है, यानी अपने स्वभावरूप ही वर्तता है; किन्तु परद्रव्यके कारण किसीके उत्पाद-व्यय-ध्रुव नही है। परद्रव्य भी उसके अपने ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभावमें अनादि अनंत वर्तता है और यह आत्मा भी अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभावमें ही अनादि–अनंत वर्तता है;—ऐसा समझनेवाले ज्ञानीको अपने आत्माके उत्पाद-व्यय-ध्रुवके अतिरिक्त बाह्यमे कोई भी कार्य किंचित्मात्र अपना भासित नही होता, इसलिये उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप अपना जो आत्मा है उसके आश्रयसे निर्मलताका ही उत्पाद होता जाता है; मलिनताका व्यय होता जाता है और ध्रुवताका अवलम्बन बना ही रहता है—इसका नाम धर्म है।

अजीव द्रव्य भी अपने उत्पाद–व्यय–ध्रुवरूप त्रिस्वभावका स्पर्श करता है, परका स्पर्श नहीं करता जैसे कि—मिट्टीके पिण्डमेंसे घड़ा हुआ; वहाँ पिण्ड अवस्थाके व्ययको, घट अवस्थाके उत्पादको और मिट्टीपनेकी ध्रुवताको वह मिट्टी स्पर्श करती है; किन्तु वह कुम्हारको, चाकको, डोरीको या अन्य किसी परद्रव्यको स्पर्श नहीं करती; और कुम्हार भी हाथके हलन–चलनरूप अपनी अवस्थाका जो उत्पाद हुआ उस उत्पादको स्पर्श करता है, किन्तु अपनेसे बाह्य रोमे घड़ेको वह स्पर्श नही करता।

जगतमें छहों द्रव्य एक ही क्षेत्रमें विद्यमान होने पर भी कोई द्रव्य दूसरे द्रव्यके स्वभावको स्पर्श नहीं करता; अपने-अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुवतारूप स्वभावमें ही प्रत्येक द्रव्य वर्तता है इसलिये वह अपने स्वभावको ही स्पर्श करता है। देखो, यह सर्वज्ञदेव कथित वीतरागी भेदज्ञान! निमित्त–उपादानका स्पष्टीकरण भी इसमें आजाता है। उपादान और निमित्त यह दोनों पदार्थ एक साथ प्रवर्तमान होनेपर भी उपादानरूप पदार्थ अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुवतारूप स्वभावका ही स्पर्श करता है—निमित्तका किंचित् भी स्पर्श नही करता। और निमित्तभूत पदार्थ भी उसके अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुवतारूप स्वभावका ही स्पर्श करता है, उपादानको वह किंचित् स्पर्श नहीं करता। उपादान और निमित्त दोनों पृथक्-पृथक् अपने-अपने स्वभावमें ही वर्तते हैं, परिणमन करते हैं।

अहो! पदार्थोंका यह एक उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव भली भाँति पहिचान ले तो भेदज्ञान होकर स्व-द्रव्यके ही आश्रयसे

निर्मल पर्यायका उत्पाद और मलिनताका व्यय हो;—उसका नाम धर्म है और वही सर्वज्ञ भगवानके सर्व उपदेशका तात्पर्य है।"— [वी० सं० २४८१ आसोज मासका आत्मधर्म अंक पत्र ३०१—२ से उद्‌धृत]

प्रश्न (६३)—दूसरे प्रकारसे द्रव्यका क्या लक्षण है?

उत्तर—१—गुणपर्ययवत् द्रव्यम् [मोक्षशास्त्र, अ० ५, सूत्र ३८]

अर्थ—द्रव्य गुण पर्यायवाला है।

२—गुणपर्ययसमुदायो द्रव्यम्। [पंचाध्यायी भाग १, गाथा ७२]

अर्थ—गुणो तथा पर्यायोंका समुदाय वह द्रव्य है।

३—गुणसमुदायो द्रव्यम्। [पंचाध्यायी भाग १, गाथा ७३]

अर्थ—गुणोंका समुदाय वह द्रव्य है।

४—समगुणपर्यायो द्रव्यम्। [पंचाध्यायी भाग १, गाथा ७३]

अर्थ—समगुण—पर्यायोंको (युगपत् सम्पूर्ण गुण पर्यायोंको ही) द्रव्य कहते हैं।

स्पष्टार्थ—देश*, देशांश, गुण और गुणांशरूप स्वचतुष्टयको ही एक साथ एक शब्द द्वारा द्रव्य कहते हैं। भेद-विवक्षासे द्रव्यका स्वरूप समझानेके लिये स्वचतुष्टयका निरूपण किया है; उसीको अभेद-विवक्षासे एक शब्दमें "द्रव्य" कहा जाता है। यही "समगुणपर्याय" शब्दका स्पष्टीकरण है।

[पंचाध्यायी भाग १, गाथा ७४]

५—"द्रव्यत्वयोगाद् द्रव्यम्।"

अर्थ—द्रव्यत्वके सम्बन्धसे द्रव्य है। यह भी प्रमाण है। किस प्रकार? गुण-पर्यायोंको द्रवित हुए बिना द्रव्य

* देश–द्रव्य; देशांश–क्षेत्र; गुण–भाव; गुणांश—पर्याय–काल

नहीं होता; इसलिये द्रवित होना द्रव्यत्वगुणसे है; (द्रव्य स्वयं) द्रवित होकर गुण-पर्यायमें व्याप्त होकर उसे प्रगट करता है, इसलिये गुण-पर्यायका प्रगट करना द्रव्यत्वगुणसे है। इसलिये द्रव्यत्व (गुण) की विवक्षासे "द्रव्यत्वयोगाद् द्रव्यम्"—द्रव्यत्वके संबंधसे द्रव्य है.....द्रव्य, गुण–पर्यायोंको द्रवित करता है; गुण–पर्यायें द्रव्यको द्रवित रखते हैं, इसलिये वे "द्रव्य" नाम प्राप्त करते हैं.......अपने स्वभावरूपसे **द्रव्य स्वतः परिणमित होता है इसलिये (वह) स्वतः सिद्ध कहलाता है।**

(—इसप्रकार "सत्ता", "गुण-पर्यायवाला", 'गुणोंका समुदाय", "द्रव्यत्वका सम्बन्ध" आदि लक्षण प्रमाण हैं। उनमेंसे किसी एकको जब मुख्य करके कहा जाता है तब शेष लक्षण भी उसमें गर्भितरूपसे आ ही जाते हैं—ऐसा जानना।)

[चिद्विलास पृष्ठ ३ से]

विशेषार्थ—

(१) "यहाँ मुख्यतासे द्रव्यके लक्षणका विचार किया गया है। ऐसा करते हुए ग्रन्थकारने विविध आचार्योंके अभिप्रायानुसार तीन लक्षण कहे हैं। प्रथम लक्षणमें द्रव्यको गुणपर्यायवाला बतलाया है। बात यह है कि प्रत्येक द्रव्य अनंतगुणोंका और क्रमरूप होनेवाली उनकी पर्यायोंका पिण्डमात्र है। इसका अर्थ यह है कि—जिससे धारामें (प्रवाहमें) एकरूपता बनी रहती है वह गुण है, और जिससे उसमें भेद प्रतीत होते हैं

वह पर्याय है। जीवमें ज्ञानकी धाराका विच्छेद कभी नहीं होता, इसलिये ज्ञान वह गुण है; किन्तु कभी-कभी वह मतिज्ञानरूप होता है और कभी अन्यरूप होता है, इसलिये मतिज्ञानादि उसकी पर्यायें हैं। द्रव्य सदैव गुण-पर्यायोंरूप रहता है इसलिये उसे गुण-पर्यायोंवाला कहा है।

—इसीप्रकार यद्यपि द्रव्य, गुण-पर्यायवाला अथवा गुण और पर्यायोंके समुदायमात्र प्राप्त होता है, तथापि कुछ आचार्य गुणोंके समुदायको द्रव्य कहते हैं। इस लक्षणमें विविध अवस्थाओंकी अविवक्षा करके (गौण करके) यह कथन किया गया है; इसलिये उसे पूर्वोक्त लक्षणका विरोधी न मानकर उसका पूरक ही मानना चाहिये।

तथापि गुण पर्यायोंवाला अथवा गुणवाला द्रव्य है— ऐसा कथन करनेसे गुण और पर्याय भिन्न प्रतीत होते हैं और द्रव्य भिन्न प्रतीत होता है; इसलिये इस दोषके निवारणार्थ कुछ आचार्य द्रव्यका लक्षण समगुणपर्याय कहते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि देश, देशांश तथा गुण और गुणांश—यह पृथक्-पृथक् न होकर परस्पर (एक-दूसरेसे) अभिन्न हैं। इनमेंसे किसीको भी पृथक् करना शक्य नहीं है। जिसप्रकार—वृक्ष तना, डाल आदिरूप होता है, उसीप्रकार देश, देशांश, गुण और गुणांशमय द्रव्य है..... पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे गुण, गुणांश आदिको पृथक्-पृथक् कहा जाता है, किन्तु द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे एक अखण्ड द्रव्य ही है.......

(पंचाध्यायी, अध्याय १, गाथा ७२ से ७४ तकके विशेषार्थमेंसे । पंडित फूलचन्दजी सम्पादित हिन्दी आवृत्तिसे)

(२) "मोक्षशास्त्र" अध्याय ५, सूत्र २९–३० में कहे गये लक्षणसे यह लक्षण (गुण–पर्यायवत् द्रव्यम्) भिन्न नही है; शब्दभेद है किन्तु भाव भेद नही है । पर्यायसे उत्पाद-व्ययकी और गुणसे ध्रौव्यकी प्रतीति हो जाती है ।

गुणको अन्वय, सहवर्ती पर्याय अथवा अक्रमवर्ती पर्याय भी कहते हैं; तथा पर्यायको व्यतिरेकी अथवा क्रमवर्ती कहते हैं । द्रव्यका स्वभाव गुण-पर्याय रूप है,–ऐसा सूत्रमें कहकर द्रव्यका अनेकान्तपना सिद्ध किया है ।

द्रव्य, गुण और पर्याय वस्तुरूपसे अभेद–अभिन्न है । नाम, सख्या, लक्षण और प्रयोजनकी अपेक्षासे द्रव्य, गुण और पर्यायमें भेद है, किन्तु प्रदेशसे अभेद है–इसप्रकार वस्तुका भेदाभेद स्वरूप समझना चाहिये ।"

[मोक्षशास्त्र, अध्याय ५, सूत्र ३८ की टीका]

प्रकरण दूसरा

(२) गुण अधिकार

सामान्य गुण

प्रश्न (६४)–समस्त विश्व तीन पदार्थोंमें समा जाता है; तो वे तीन पदार्थ कौन–से हैं ?

उत्तर—छह द्रव्य, उनके गुण और उनकी पर्यायें* ।

प्रश्न (६५)–छहों द्रव्योंके द्रव्य–गुण–पर्यायको जाननेका फल क्या ?
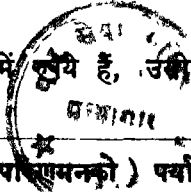
उत्तर—स्व-परका भेदज्ञान और पर पदार्थोंकी कर्तृत्वबुद्धिका अभाव ।

प्रश्न (६६)–गुण किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जो द्रव्यके सम्पूर्ण भागमें और उसकी सर्व अवस्थाओंमें रहे उसे गुण कहते हैं ।

प्रश्न (६७)–"गुणोंके समूहको द्रव्य कहते हैं"—इन शब्दों परसे द्रव्य और गुणका संख्या भेद कहिये ।

उत्तर—द्रव्य एक, गुण अनेक ।

प्रश्न (६८)–जिसप्रकार थैलीमें रुपये हैं, उसीप्रकार द्रव्यमें गुण होंगे ?

---

* गुणोंके विशेष कार्यको (परिणमनको) पर्याय कहते हैं ।

उत्तर—नहीं ।

प्रश्न (६९)—तो फिर द्रव्यमें गुण किसप्रकार रहते हैं ?

उत्तर—जिसप्रकार गुड़में मिठास, रंग आदि एकमेकरूपसे रहते हैं, उसीप्रकार द्रव्यमें गुण एकमेकरूपसे रहते हैं।

प्रश्न (७०)—गुणकी व्याख्यामेंसे क्षेत्रवाचक और कालवाचक शब्द बतलाइये ।

उत्तर—"सम्पूर्ण भागमें"—यह क्षेत्र बतलाता है; "सर्व अवस्थाओं-में"—यह काल बतलाता है ।

प्रश्न (७१)—"सम्पूर्ण भागमें"—इस कथनसे क्या समझें ?

उत्तर—जितना द्रव्यका क्षेत्र उतना ही गुणोंका क्षेत्र होता है, किसी-का क्षेत्र कभी छोटा-बड़ा नहीं होता ।

प्रश्न (७२)—'सर्व अवस्थाओं"का क्या तात्पर्य ?

उत्तर—द्रव्यकी तीनों कालकी अनादि-अनंत अवस्थायें ।

प्रश्न (७३)—द्रव्य पहला या गुण ?

उत्तर—दोनों अनादि-अनंत होनेसे पहले या पश्चात् कोई नहीं है।

प्रश्न (७४)—संख्या अपेक्षासे द्रव्य, गुण और पर्यायकी तुलना करो ।

उत्तर—द्रव्य एक और उसके गुण तथा पर्यायें अनेक।

प्रश्न (७५)—गुणकी व्याख्यामेंसे "द्रव्यके सम्पूर्ण भागमें"—यह शब्द निकाल दें तो क्या दोष आयेगा ?

उत्तर—क्षेत्र अपेक्षासे गुण द्रव्यके सम्पूर्ण भागमें व्याप्त हैं। व्या-ख्यामेंसे "सम्पूर्ण भागमें"—यह शब्द निकाल दें तो निम्नोक्त दोष आयेंगे :—

(१) गुण द्रव्यके अधूरे भागमें रहनेसे शेष भागका द्रव्य गुण रहित हो जायेगा और ऐसा होनेसे द्रव्यका भी नाश होगा।

(२) जिसप्रकार—जितनी बड़ी मिसरीकी डली है उसके उतने ही भागमें अपने मिठास (-रसादि) आदि गुण हैं; उसी-प्रकार—जितने भागमें द्रव्य, उसके उतने ही भागमें गुण—ऐसी जो क्षेत्र अपेक्षा है वह मर्यादा नहीं रहेगी।

प्रश्न (७६)—गुणकी व्याख्यामेंसे काल अपेक्षा बतलानेवाले—"सर्व अवस्थाओंमें"—यह शब्द निकाल दें तो क्या दोष आयेगा ?

उत्तर—काल अपेक्षासे द्रव्यमें अनादि-अनंत सर्व अवस्थाओंमें रहे वह गुण—ऐसी व्याख्या नहीं हो सकेगी, और उससे निम्नोक्त दोष आयेंगे—

(१) गुण, द्रव्यके अमुककालमें रहेगा इसलिये शेष कालमें द्रव्य गुण रहित होनेसे द्रव्यका ही नाश हो जायेगा।

(२) किसी कालमें ही गुणका अस्तित्व (सत्ता) माननेसे द्रव्यकी सर्व अवस्थाओंमें व्यापक रहनेरूप गुणकी मर्यादा नहीं रहेगी।

प्रश्न (७७)—गुणोंके कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—दो–(१) सामान्य और (२) विशेष।

प्रश्न (७८)—सामान्य गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो सर्व द्रव्योंमें हो उसे सामान्य गुण कहते हैं।

प्रश्न (७९)—विशेष गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो सर्व द्रव्योंमें न हो, किन्तु खास अपने-अपने द्रव्यमें हो उसे विशेष गुण कहते हैं।

प्रश्न (८०)—सामान्य गुणोंका क्षेत्र बड़ा या विशेष गुणोंका ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्यमें सामान्य और विशेष गुणोंका क्षेत्र एक-सा ही होता है, क्योंकि गुणका लक्षण बतलाया उसमें कहा था कि

गुण द्रव्यके सम्पूर्ण भागमें रहता है।

प्रश्न (८१)–सामान्य और विशेष गुणोंमें प्रथम कौन और पश्चात् कौन ?

उत्तर—दोनों एक साथ अनादिकालीन हैं; प्रथम या पश्चात् कोई नहीं हैं।

प्रश्न (८२)–प्रत्येक द्रव्यमें रहनेवाले प्रत्येक गुणोंको भिन्न–भिन्न किस आधारसे जानोगे ?

उत्तर—प्रत्येक गुणके भिन्न-भिन्न लक्षणोंसे ।

प्रश्न (८३)–किस अपेक्षासे द्रव्यसे गुण पृथक् नही होते ?

उत्तर—प्रत्येक अपेक्षासे पृथक् नही होते; क्योंकि द्रव्य और गुणोका क्षेत्र एक ही है।

प्रश्न (८४)–प्रत्येक द्रव्यके गुणोंके प्रदेश भिन्न-भिन्न माननेमे क्या दोष आयेगा ?

उत्तर—ऐसा माना जाये तो द्रव्यके आश्रयसे गुण न रहे, और जितने गुण हैं उतने अलग-अलग द्रव्य हो जायें, तथा इस द्रव्यका यह गुण है-ऐसी मर्यादा न रहे।

प्रश्न (८५)–गुणकी व्याख्यामें द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव किसप्रकार आते हैं ?

उ०–(१) "द्रव्य" द्रव्यको बतलाता है।

(२) "सम्पूर्ण भागमें"—यह क्षेत्र बतलाता है।

(३) "सर्व अवस्थाओंमें"–यह काल बतलाता है।

(४) "गुण–यह भाव बतलाता है।

प्र०–(८६) द्रव्य और उसके गुणोंमें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी तुलना करो।

उत्तर—द्रव्य और गुणके द्रव्य-क्षेत्र और काल एक-से हैं; किन्तु उनके भावोंमें अन्तर है।

प्र० (८७)—द्रव्य और गुणोंमें संज्ञा, संख्या और लक्षणकी अपेक्षासे भेद बतलाओ।

उ०—(१) संज्ञा—दोनोंके नाममें भेद है।

(२) संख्या—द्रव्य एक और गुण अनेक होते हैं।

(३) लक्षण—"गुणोंका समूह वह द्रव्य"—यह द्रव्यका लक्षण है, और "जो द्रव्यके सम्पूर्ण भागमें तथा उसकी सर्व अवस्थाओं-में रहे वह गुण"—यह गुणका लक्षण है। इसप्रकार लक्षणसे भी द्रव्य और गुणमें भेद है।

प्र० (८८)—प्रत्येक गुणके कार्यक्षेत्रमें मर्यादा क्या है?

उ०—प्रत्येक गुण अपने स्व द्रव्यके क्षेत्रमें निरन्तर अपना ही कार्य करता है; कभी परका या अन्य गुणका कार्य नहीं करता—ऐसी प्रत्येक गुणके कार्यक्षेत्रकी मर्यादा है।

प्र०—(८६)—ऐसा कौन-सा द्रव्य है कि जिसमें सामान्य गुण नही होते?

उ०—ऐसा कोई द्रव्य नहीं होता; क्योंकि प्रत्येक द्रव्यमें सामान्य और विशेष दोनों प्रकारके गुण होते हैं।

प्र०—(६०)—द्रव्यमें सामान्य गुण न हो तो क्या दोष? और विशेष गुण न हो तो क्या?

(१) सामान्य गुण न हो तो द्रव्यत्व ही न रहे।

(२) विशेषगुण न हो तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्यसे पृथक् मालूम न हो, अर्थात् किसी द्रव्यको पर द्रव्यसे भिन्न नहीं जाना जा सकता।

प्रश्न (६१)—सामान्य गुण कितने होते हैं ?

उत्तर—सामान्य गुण अनेक हैं, किन्तु मुख्यरूपसे जानने योग्य छह हैं—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व और प्रदेशत्व ।

(१) अस्तित्व गुण

प्रश्न (६२)—अस्तित्व गुणका "गुणकी व्याख्या"में प्रयोग कीजिये ।

उत्तर—अस्तित्व गुण छहों द्रव्योंके अपने-अपने पूर्ण भागमें और उनकी सर्व अवस्थाओंमें रहता है ।

प्रश्न (६३)—अस्तित्वगुण किसे कहते हैं ।

उत्तर—जिस शक्तिके कारण द्रव्यका कभी अभाव न हो उसे अस्तित्वगुण कहते हैं; क्योंकि द्रव्य अनादि अनन्त है ।

प्रश्न (६४)—श्रीआदिनाथ भगवान जिस काल इस लोकमें विद्यमान थे उसी कालमें हम भी थे—यह किस आधारपर मानोगे ?

उत्तर—हममें अस्तित्व गुण होनेसे सिद्ध होता है कि उस काल लोकके किसी भी क्षेत्रमें हम थे ।

प्रश्न (६५)—क्या यह सच है कि ईश्वरने जगतकी रचना की है ?

उत्तर—नहीं; अस्तित्व गुणके कारण विश्व अर्थात् अनन्त जीव, अजीवादि छहों द्रव्य स्वयंसिद्ध अनादि-अनन्त हैं; इसलिये किसीने उसे बनाया नहीं है ।

प्रश्न (६६)—कोई जगतकी रक्षा करता है ?

उत्तर—(१) नहीं प्रत्येक वस्तु अपनी अनंतशक्तिसे स्वयं रक्षित है (२) प्रत्येक द्रव्यमें अस्तित्व गुण होनेसे अपनी रक्षा (अस्तित्व)के लिये उसे किसी दूसरेकी आवश्यक्ता नहीं पड़ती ।

प्रश्न (९७)–कोई जगतका संहार (-विनाश) करता है ?

उत्तर—नहीं; अस्तित्व गुणके कारण किसी द्रव्यका कभी नाश नहीं होता; किन्तु द्रव्यत्व गुणके कारण प्रत्येक द्रव्य स्वयं ही सदैव अपनी नई–नई पर्यायें (अवस्थायें) उत्पन्न करता है और स्वयं ही अपनी पूर्व अवस्थाओंका नाश करता है अर्थात् निरंतर परिवर्तित होता है और द्रव्यरूपसे नित्यस्थायी रहता है।

प्रश्न (९८)–इस परसे सिद्धान्त क्या समझना ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य त्रिकाल भिन्न-भिन्न, स्वतन्त्र है और प्रत्येक द्रव्यमें अपने ही कारण पर्याय अपेक्षासे नई अवस्थाकी उत्पत्ति, पूर्व पर्यायका नाश और द्रव्य अपेक्षासे नित्य स्थिर रहना—ऐसी स्थिति त्रिकाल हो रही है।

प्रश्न (९९)—जीवके अस्तित्व गुणको जाननेसे क्या लाभ ?

उत्तर—मैं स्वतन्त्र अनादि-अनंत अपने ही कारण स्थित रहनेवाला हूँ, किसी परसे या संयोगसे मेरी उत्पत्ति नहीं हुई है और न मेरा कभी नाश होता है।—ऐसा अस्तित्वगुणको जाननेसे लाभ होता है और मरणका भय दूर होजाता है।

(२) वस्तुत्व गुण।

प्रश्न (१००)–वस्तुत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस शक्तिके कारण द्रव्यमें अर्थ क्रिया (प्रयोजनभूत क्रिया) हो; जैसे कि–आत्माकी अर्थ क्रिया–जानना आदि है।

प्रश्न (१०१)–सिद्ध भगवान कृतकृत्य होगये हैं; तो अब उनका कार्य करना रुक गया है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि उनमें वस्तुत्वगुणके कारण प्रत्येक गुणका प्रयोजनभूत कार्य (निर्मल स्वभावरूप परिणमन) प्रतिसमय हो रहा है।

प्रश्न (१०२)–द्रव्यका "वस्तु" नाम क्यों है ?

उत्तर—(१) वस्तुत्व गुणकी मुख्यतासे द्रव्यको वस्तु कहते हैं।

(२) जिसमें गुण, पर्याय बसते हैं उसे वस्तु कहते हैं।

—(गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा ६७२ टीका)

(३) जिसमें सामान्य–विशेष स्वभाव हो उसे वस्तु कहते हैं।

(४) प्रत्येक द्रव्य अपना प्रयोजनभूत कार्य करता है, इसलिये उसे वस्तु कहते हैं।

"वस्तु" नाम यह भी सूचित करता है कि प्रत्येक द्रव्यके गुण, पर्याय अपने २ द्रव्यमें ही बसते हैं; इसलिये जीवके गुण-पर्याय शरीरमें अथवा पर द्रव्यमें वास नही करते। प्रत्येक जीवके गुण पर्याय उस २ जीवमें बसते हैं; इसलिये जीवको सचमुच किसी अन्य द्रव्यका अवलम्बन लेना पड़े—यह सम्भव ही नही है। प्रत्येक द्रव्य अपनेमें ही परिपूर्ण है।

(३) द्रव्यत्व गुण।

प्रश्न (१०३)–द्रव्यत्वगुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस शक्तिके कारण द्रव्यकी अवस्था निरन्तर बदलती रहे उसे द्रव्यत्वगुण कहते हैं।

प्रश्न (१०४)–द्रव्यका नाम "द्रव्य" क्यों है ?

उत्तर—द्रव्यत्व गुणकी मुख्यतासे।

प्रश्न (१०५)–कालसे सब बदलता है–परिवर्तित होता रहता है, इसलिये सब कालके आधीन है ?

उत्तर—नही; क्योंकि जगतके छहों द्रव्य निरन्तर अपनी द्रव्यत्व-शक्तिसे ही परिवर्तन करते हैं; उसमें काल द्रव्य तो निमित्त-मात्र है। वस्तुकी स्थिति किसीकी अपेक्षा नहीं रखती; इस-

लिये कालके आधीन कहना व्यवहार कथन है।

प्रश्न (१०६)–द्रव्यके प्रत्येक गुणमें नई–नई पर्यायें होती हैं? होती हैं तो उसका कारण क्या?

उत्तर—होती हैं, क्योंकि सर्व गुण निरन्तर परिणमन स्वभावी होते हैं और उनमें अपने–अपने द्रव्यत्व गुण निमित्त हैं।

प्रश्न (१०७)–प्रत्येक द्रव्यमें द्रव्यत्वादि गुण त्रिकाल रहते हैं? और रहते हैं तो उसका कारण क्या?

उत्तर—(१) हाँ द्रव्यमें द्रव्यत्वादि गुण अपने–अपने कारण स्वय त्रिकाल रहते हैं; उसमें अस्तित्व नामका सामान्य गुण निमित्त है।

(२) जिसप्रकार द्रव्यका कभी नाश न होनेसे वह अनादि अनंत है, उसीप्रकार द्रव्यके समस्त गुण भी अस्तित्व गुणके कारण कभी नाशको प्राप्त नहीं होते, इसलिये वे भी अनादि-अनन्त हैं।

प्रश्न (१०८)–द्रव्यत्व गुणसे क्या समझना चाहिये?

उत्तर—(१) सर्व द्रव्योंकी अवस्थाओंका परिवर्तन निरन्तर उनके अपने कारण अपनेमें ही होता रहता है, दूसरा कोई उनकी अवस्था नहीं बदलता।

(२) जीवकी कोई पर्याय अजीवसे–कर्मसे शरीरादिसे नही बदलती, और शरीरादि किसी परद्रव्यकी अवस्था जीवसे नहीं बदलती।

(३) जीवमें जो अज्ञानदशा है वह सदैव एक-सी नहीं रहती।

(४) पहले अल्पज्ञान होता है और फिर उसमें वृद्धि होती है तो वहाँ ज्ञानमें परिवर्तन होनेका कारण द्रव्यत्व गुण है;

और ज्ञानका विकास ज्ञान गुणमेंसे ही होता है, किन्तु शास्त्रादिसे—बाह्यसे ज्ञान नहीं आता।

(५) मिट्टीमेंसे घड़ा द्रव्यत्वगुणके कारण हुवा है; कुम्हारादि तो निमित्तमात्र हैं। निश्चयसे देखनेपर कुम्हारने घड़ा नही बनाया है। मिट्टीकी अवस्था कुम्हारने परिवर्तित की—ऐसा माननेवालेने द्रव्यत्व गुणको नहीं माना है। पदार्थके एक गुणको अस्वीकार करनेसे सम्पूर्ण द्रव्यका अस्वीकार होता है और ऐसा होनेसे उसने अपने अभिप्रायमें सर्व द्रव्योंका अभाव माना है।

प्रश्न (१०९)—प्रत्येक द्रव्यमें अपना कार्य करनेका सामर्थ्य काहे से है?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य द्रव्यत्व गुणके कारण नित्य परिणमन शक्तिवाला है, इसलिये निरन्तर अपना—अपना कार्य करता रहता है और उसमें उसका अपना वस्तुत्वगुण निमित्त कारण है।

प्रश्न (११०)—द्रव्यत्वगुण और वस्तुत्व गुणके भावमें क्या अन्तर है?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्यमें निरन्तर—प्रतिसमय* नई—नई अवस्थाएँ होती रहती हैं—ऐसा द्रव्यत्व गुण बतलाता है; और प्रत्येक द्रव्यमें प्रयोजनभूत क्रिया उसके अपनेसे हो रही है, कोई द्रव्य अपना कार्य किये बिना नहीं रहता—ऐसा वस्तुत्व गुण बतलाता है।

(४) प्रमेयत्व गुण

प्रश्न (१११)—प्रमेयत्व गुण किसे कहते हैं?

* समय=जिसका भाग न हो सके—ऐसा छोटेसे छोटा काल।

उत्तर—जिस शक्तिके कारण द्रव्य किसी न किसी ज्ञानका विषय हो उसे प्रमेयत्व गुण कहते हैं।

प्रश्न (११२)—"किसी न किसी ज्ञान"का क्या मतलब ?

उत्तर—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान—इन पाँचमें-से कोई भी एक अथवा अधिक ज्ञान।

प्रश्न (११३)—जगतमें कोई पदार्थ ऐसा है जो ज्ञात हुए बिना रहे ? यदि वह ज्ञात हुए बिना रहे तो क्या दोष आयेगा ?

उत्तर—ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो ज्ञात हुए बिना रहे। यदि वह ज्ञात हुए बिना रहे तो प्रमेयत्व गुणका नाश हो—जाये, और एक गुणका नाश होनेसे उसके साथके अस्तित्वादि समस्त गुणों-का भी नाश हो जायेगा। ऐसा होनेसे द्रव्य ही नहीं रहेगा।

प्रश्न (११४)—जगतमें कितने द्रव्य प्रमेयत्व गुणवाले हैं ? उसका कारण बतलाइये।

उत्तर—समस्त द्रव्य प्रमेयत्व गुणवाले हैं; क्योंकि वह गुण सभी द्रव्योंका सामान्य गुण है।

प्रश्न (११५)—रूपी पदार्थ ज्ञानमें ज्ञात होते हैं किन्तु अरूपी पदार्थ ज्ञात नहीं होते—यह कथन बराबर है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि प्रत्येक द्रव्य प्रमेयत्व गुणवाला है। प्रत्येक पदार्थ किसी न किसी ज्ञानका विषय होता है, इसलिये रूपी और अरूपी दोनों पदार्थ अवश्य ही बराबर ज्ञात होते हैं।

प्रश्न (११६)—आत्मा तो अरूपी है और हमारा ज्ञान अत्यन्त अल्प है; तो आत्माका ज्ञान कैसे हो सकता है ?

उत्तर—ऐसा होनेपर भी आत्माका ज्ञान बराबर हो सकता है; क्योंकि उसमें (आत्मामें) भी प्रमेयत्व गुण विद्यमान है, और

वह सम्यक्‌मति तथा श्रुतज्ञानका विषय हो सकता है, इसलिये यथार्थ समझका पुरुषार्थ किया जाये तो आत्माका ज्ञान अवश्य हो सकता है।

प्रश्न (११७)—"आत्मा अलख-अगोचर है"—इसका क्या मतलब ?

उत्तर—जड़ इन्द्रियोसे, विकल्प (-राग) से और पराश्रयसे आत्मा ज्ञात नहीं होता, इसलिये उसे अलख—अगोचर कहा जाता है; किन्तु आत्मामें ज्ञान गुण तथा प्रमेयत्व गुण होनेके कारण स्व–संवेदन ज्ञानसे वह अवश्य ज्ञात हो—अनुभवमें आये ऐसा है—यही उसका अर्थ समझना चाहिये।

प्रश्न (११८)—ज्ञान करनेकी और ज्ञात होनेकी—यह दोनों शक्तियाँ एक साथ किसमें है।

उत्तर—ज्ञान करनेकी ज्ञाताशक्ति और ज्ञात होनेकी प्रमेयत्व—ज्ञेय शक्ति दोनों शक्तियाँ (-गुण) एक ही साथ जीव द्रव्यमें ही है।

प्रश्न (११९)—ज्ञात होनेकी शक्तिका नाम और उसका व्युत्पत्ति-अर्थ क्या है ?

उत्तर—ज्ञात होनेकी शक्तिका नाम प्रमेयत्व गुण है, उसका व्युत्पत्ति-अर्थ निम्नानुसार है:—

प्रमेयत्व=प्र+मेय+त्व।

प्र=प्रकृष्ट रूपसे; विशेषत:।

मेय=मापमें आने योग्य (मा धातुका विध्यर्थ कृदन्त)

त्व=पना (भाववाचक प्रत्यय)

प्रमेयत्व=प्रकृष्टरूपसे मापमें (ज्ञानमे—ख्यालमे) आने योग्यपना

(५) अगुरुलघुत्व गुण

प्रश्न (१२०)—अगुरुलघुत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस शक्तिके कारण द्रव्यका द्रव्यत्व बना रहे अर्थात् :—

(१) एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं होता,

(२) एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं होता,

(३) द्रव्यमें विद्यमान अनन्त गुण बिखरकर अलग-अलग न हो जायें; उस शक्तिको अगुरुलघुत्व गुण कहते हैं।

प्रश्न (१२१)–जीव द्रव्यमें अगुरुलघुत्व गुणके कारण उसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी मर्यादा बतलाओ।

उत्तर—(१) अनंत गुणोंके पिण्डरूप जीव द्रव्यका स्व-द्रव्यत्व स्थायी रहता है और वह कभी शरीरादिरूप नहीं होता।

(२) जीवका असंख्यात प्रदेशी स्वक्षेत्र कभी पररूप नहीं होता, परमें एकमेक नहीं होता न मिल जाता और दो जीवोंका स्वक्षेत्र भी कभी एक नहीं होता।

(३) जीवके एक गुणकी पर्याय अन्य गुणकी पर्यायरूप नहीं होती (दूसरेका कुछ करे, दूसरेसे उत्पन्न हो–बदले ऐसा नहीं होता।

(४) भाव अर्थात् गुण; जितने जिसरूप हैं उतने उसीरूप सत् रहते हैं बिखरकर अलग-अलग नहीं होते।

प्रश्न (१२२)–जीव द्रव्यकी उपरोक्तानुसार मर्यादा समझनेसे क्या लाभ ?

उत्तर—(१) छहों द्रव्य और उनके गुण तथा पर्यायोंकी स्वतन्त्रता जानने पर अपना हित अहित (–भला-बुरा) अपनेसे अपनेमें ही होता है–ऐसा यथार्थ ज्ञान होता है;

(२) कोई भी द्रव्यकर्म अथवा किसी परके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव इस जीवको लाभ-हानि नहीं कर सकते–ऐसा निर्णय होता है;

(३) मैं स्वतन्त्र ज्ञानानन्दस्वभावी पदार्थ हूँ और जगत्‌के समस्त पदार्थ मुझसे त्रिकाल भिन्न हैं—ऐसी भेद ज्ञानरूप ज्योतिका उदय होता है वही सम्यक्‌ज्ञान दर्शनरूप धर्म है।

प्रश्न (१२३)—बाह्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावके अनुसार पर्याय बदलती है—ऐसा माननेमें क्या दोष ?

उत्तर—दो द्रव्योंको भिन्न भिन्न स्वतन्त्र नहीं माना और द्रव्यमें अगुरुलघुत्वका स्वीकार भी नहीं किया; इसलिये द्रव्यका ही नाश आदि दोष आते हैं।

प्रश्न (१२४)—छहों द्रव्य तथा उनके गुण-पर्यायकी स्वतन्त्रताकी मर्यादा किस गुणसे है ?

उत्तर—अगुरुलघुत्व गुणसे।

प्रश्न (१२५)—अगुरुलघुत्व गुणसे विशेष क्या समझना ?

उत्तर—(१) कोई भी द्रव्य अन्य द्रव्यके आधीन नहीं है।

(२) एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ नहीं कर सकता।

(३) द्रव्यका एक गुण उसी द्रव्यके दूसरे गुणका कुछ नही कर सकता।

(४) किसी द्रव्यकी पर्याय अन्य द्रव्यकी पर्यायमें कुछ नहीं कर सकती; वे एक दूसरेके आधीन नही हैं।

(५) अगुरुलघुत्व गुणका ऐसा यथार्थ स्वरूप जाननेसे—जगतके छहों द्रव्योंके द्रव्य-गुण-पर्याय भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र है, और मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा उन सबसे भिन्न हूँ—इसप्रकार भेदज्ञानरूपी अपूर्व धर्म प्रगट होता है।

प्रश्न (१२६)—एक द्रव्यमें रहनेवाले गुण परस्पर एक-दूसरेका कार्य करते हैं ?—नही करते तो उनकी व्यवस्था कैसी है ?

उत्तर—अगुरुलघुत्वके कारण एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं होता

इसलिये एक गुणका कार्यक्षेत्र दूसरे गुणमें नहीं जाता;—ऐसा होनेसे एक द्रव्यमें भी एक गुण दूसरे गुणका कार्य नहीं कर सकता, किंतु प्रत्येक गुण नित्यपरिणाम स्वभावी होनेसे प्रतिसमय अपनी नई-नई पर्यायें उत्पन्न करता है, उसमें दूसरे गुणकी पर्यायें निमित्तमात्र कही जाती हैं। एक गुणकी वर्तमान पर्यायमें कार्य होनेसे दूसरे गुणकी वर्तमान-पर्याय निमित्त कहलाती है।— इसप्रकार एक द्रव्यके आश्रित गुणोंमें भी स्वतन्त्रता होनेसे एक गुणका दूसरे गुणके साथ कर्त्ता कर्म सम्बन्ध नहीं है।

"पंचाध्यायी" अध्याय २, गाथा १००८–१० में भी कहा है कि—"कोई भी गुण किसी प्रकार दूसरे गुणमें अन्तर्भूत नहीं होता- (एक गुणमें दूसरे गुण नहीं समा जाते)। परस्पर आधार—आधेय तथा उपादान—उपादेयरूपसे (कारण—कार्यरूपसे) दो गुणोंका सम्बन्ध नहीं है, किन्तु सभी गुण अपनी-अपनी शक्तिके योगसे स्वतन्त्र हैं और वे भिन्न-भिन्न लक्षणवाले अनेक हैं, तथापि स्वद्रव्य-के साथ परस्पर एकमेक हैं।"

प्रश्न (१२७)—गुरुका ज्ञान शिष्यको प्राप्त हुआ; मुझे शास्त्रोंसे ज्ञानकी प्राप्ति हुई—यह ठीक है ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि एक द्रव्यके अनन्त गुणोंमेंसे एक गुण दूसरे गुणमें नहीं जाता; तो फिर भिन्न द्रव्यके गुण दूसरे द्रव्यमें कैसे जायेंगे ? एक वस्तुका कोई भी गुण दूसरीको मिलता है— ऐसी मान्यतावाला अगुरुलघुत्व गुणको नहीं मानता; वह वस्तुको ही स्वतन्त्र नहीं मानता।

प्रश्न (१२८)—मैं चश्मे द्वारा पुस्तक पढ़ रहा हूँ और उससे मुझे ज्ञान होता है—ऐसा मानना बराबर है ?

उत्तर—नहीं; अगुरुलघुत्व गुणके कारण ऐसा नहीं होता; क्योंकि:-

(१) परसे आत्माका और आत्मासे परका कार्य हो तो द्रव्य बदलकर नष्ट हो जाये, लेकिन ऐसा नहीं होता।

(२) आत्मा निश्चयसे स्व-पर प्रकाशक अपने आत्माको जानता है और—

(३) पुस्तकके शब्दोंको जीव अपने ज्ञान द्वारा व्यवहारसे जानता है, वहाँ चश्मा उसमें निमित्तमात्र है।

प्रश्न (१२९)–ब्राह्मी तेलके प्रयोगसे या बादाम आदि खानेसे बुद्धि बढ़ती है—यह मान्यता बराबर है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि एक द्रव्यकी शक्ति दूसरे द्रव्यका कोई काम नहीं कर सकती; इसलिये ब्राह्मी तेल आदिका उपयोग करनेसे या बादाम खानेसे बुद्धि बढ़ती है वह मान्यता झूठी है—ऐसा अगुरुलघुत्व गुण बतलाता है।

प्रश्न (१३०)–दूधमें मट्ठेके मिलनेसे दही बन जाता है—यह मान्यता बराबर है ?

उत्तर—नही; दूधमें मट्ठेके मिलनेसे दही बनता हो तो पानीमें मट्ठा मिलानेसे भी दही बनना चाहिये; मट्ठेके और दूधके परमाणु पृथक्-पृथक् हैं। मट्ठारूप पर्यायवाले प्रत्येक परमाणुमें भी अगुरुलघुत्व गुण होनेसे वह दूधके परमाणुमें प्रविष्ट नही हो सकता, किन्तु द्रव्यत्वगुणके कारण दूधरूप पर्यायवाले परमाणु स्वयं परिवर्तित होकर दहीरूप होते हैं; उसमें मट्ठा तो निमित्त-मात्र है। जब दूधके परमाणु अपने क्षणिक उपादानकी योग्यतासे दहीरूप होनेका कार्य करते हैं उस समय मट्ठा आदि को निमित्तमात्र कहा जाता है।

प्रश्न (१३१)—इसमें सिद्धान्त क्या समझें ?

उत्तर—जीव जब स्वयं अपनेसे स्वसन्मुख होकर अपना स्वरूप सम्यक्‌रूपसे समझता है उस समय सम्यक्‌ज्ञानीका उपदेश आदि निमित्तरूप होता है।—इसप्रकार सर्वत्र उपादानसे ही कार्य होता है; किसी निमित्तकी कभी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती किन्तु निमित्त उस समय होता अवश्य है।

प्रश्न (१३२)—आत्मा मोक्षदशा प्राप्त करे उस समय तेजमें तेज मिल जाता है—ऐसा माना जाये तो क्या दोष आता है ?

उत्तर—(१) ऐसा माननेवालेने अगुरुलघुत्व गुण और अस्तित्व गुणका स्वीकार नहीं किया;

(२) मोक्ष जानेवाला जीव स्वतन्त्र और सुखी न हुआ किन्तु उसका नाश होगया।

—इसप्रकार जो मोक्षदशा होनेपर दूसरेमें मिल जाना-मानता है वह अपना भी मोक्षमें नाश मानता है; इसलिये ऐसा धर्म कौन चतुर पुरुष करेगा कि—जिसमें स्वयंका विनाश हो जाये ?—अर्थात् नहीं करेगा।

प्रश्न (१३३)—जीव संसारदशामें जब एकेन्द्रियपनेको प्राप्त हो तब उसके गुण कम हो जायें और जब पंचेन्द्रियपनेको प्राप्त हो तब बढ़ जायें—ऐसा होता है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि—

[१] द्रव्यमें अगुरुलघुत्व नामक गुण है, इसलिये उसके किन्हीं गुणोंकी संख्या और शक्ति कभी कम-अधिक नहीं होती।

[२] द्रव्य और गुण तो सदैव सर्व अवस्थाओंमें पूर्ण शक्तिवान् ही रहते हैं।

[३] अपने कारण गुणकी वर्तमान पर्यायमें ही परिवर्तन [परिणमन] होता है।

(६) प्रदेशत्व गुण

प्रश्न (१३४)–प्रदेशत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस शक्तिके कारण द्रव्यका कोई न कोई आकार अवश्य हो उसे प्रदेशत्व गुण कहते हैं।

प्रश्न (१३५)–आत्माको साकार और निराकार किस प्रकार कहा जाता है ?

उत्तर—प्रदेशत्व गुणके कारण प्रत्येक आत्माका अपना अरूपी आकार है ही, किन्तु रूपी आकार नही है उस अपेक्षासे वह निराकार कहलाता है। आत्माका अरूपी आकार इन्द्रियगम्य नही है—इस अपेक्षासे निराकार है और आत्माका आकार ज्ञानगम्य है, इसलिये वह आकारवान् है।

[देहलीसे प्रकाशित मोक्षमार्ग प्रकाशक—पृष्ठ १६१]

प्रश्न (१३६)–द्रव्य, गुण, पर्याय–तीनोंका भिन्न-भिन्न अथवा छोटा-—बड़ा आकार होता है ?

उत्तर—नही, द्रव्यका आकार ही गुण और पर्यायका आकार है। क्योकि तीनोका क्षेत्र एक है, इसलिये तीनोंका आकार एक ही समान है।

प्रश्न (१३७)–द्रव्य त्रिकाल और पर्याय एकसमय पर्यन्त की है, उसमें किसका आकार बड़ा है ?

उत्तर—दोनोका आकार एक–सा है।

प्रश्न (१३८)–कुछ वस्तुओंका आकार तो दीर्घकाल तक एक–सा दिखाई देता है, तो उसे परिवर्तित होनेमें कितना समय लगता होगा ?

उत्तर—वे निरन्तर प्रतिसमय बदलते ही रहते हैं, किन्तु स्थूल दृष्टिसे उनका आकार दीर्घकाल तक एक–सा दिखाई देता है।

प्रश्न (१३६)—सुवर्णके पिण्डमेंसे मुकुट बना, तो उसमें कौन-सा गुण कारण है?

उत्तर—आकार बना उसमें प्रदेशत्व गुण और पुरानी अवस्था बदलकर नई हुई उसमें द्रव्यत्व गुण कारण है।

प्रश्न (१४०)—इस "पुस्तकमें" छहों सामान्य गुण घटित करो।

उत्तर [१] इस पुस्तकमें उसके परमाणुओंका कभी नाश नही होता, क्योंकि उसमें अस्तित्व गुण है।

[२] उसमें अर्थ क्रिया है, क्योंकि उसमें वस्तुत्व गुण है।

[३] उसकी पर्यायमें निरन्तर प्रति समय नया परिवर्तन होता है; क्योंकि उसमें द्रव्यत्व गुण है।

[४] वह ज्ञात होने योग्य है, क्योंकि उसमें प्रमेयत्व गुण है।

[५] उसका कोई भी परमाणु बदलकर दूसरे परमाणुरूप नहीं होता। उसके सभी गुण-पर्यायें भी उसको मर्यादामें व्यवस्थित हैं, क्योंकि उसमें अगुरुलघुत्व गुण है।

[६] वह आकार युक्त है, क्योंकि उसमें प्रदेशत्व गुण है।

प्रश्न (१४१)—मिट्टी द्वारा घड़ा बना है–कुम्हार द्वारा नहीं बना:— इसमें कौनसे गुण सिद्ध होते हैं?

उत्तर—द्रव्यत्व और अगुरुलघुत्व।

प्रश्न (१४२)—जो नहीं जानते–ऐसे जड़ द्रव्य भी स्वतः परिणमित होते हैं–उसमें कौनसा गुण सिद्ध हुआ?

उत्तर—द्रव्यत्व गुण।

प्रश्न (१४३)—हम मनुष्य हैं इसलिये हमें अपने कार्यमें दूसरोंकी

आवश्यकता होती है, दूसरोंके विना नहीं चल सकता—ऐसा माननेवालेने कौनसे गुणोंको नहीं माना ?

उत्तर—मनुष्य तो असमान जातीय द्रव्यपर्याय है। शरीर अजीव-रूपी पुद्गल द्रव्य है और जीव सदा अरूपी चेतन द्रव्य है। उनका संयोग—एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध बन्धरूपसे है। एक द्रव्यको दूसरे द्रव्यकी आवश्यकता होती है—ऐसा मानने वालेने वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्वादि गुणोंको नहीं माना।

प्रश्न (१४४)—जो द्रव्य है उनका कभी नाश नहीं होता और न वे दूसरे द्रव्योंके साथ मिलते है,—न एकमेक होते है—उसमें कौन—से गुण कारणभूत हैं ?

उत्तर—अस्तित्वगुण और अगुरुलघुत्व गुण।

प्रश्न (१४५)—जो स्वभाव है वह गुप्त नही रहता, वह किसी-में मिल जाता नहीं,—नष्ट नही होता, परिवर्तित हुए बिना नही रहता—उसमें कौन—से गुण कारणभूत है ?

उत्तर—उसमें अनुक्रमसे प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, अस्तित्व और द्रव्यत्व गुण कारणभूत हैं।

प्रश्न (१४६)—छहों समान्य गुणोंका प्रयोजन संक्षेपमें क्या है ?

उत्तर—(१) किसी द्रव्यकी कभी उत्पत्ति या विनाश नहीं है इसलिये कोई किसीका कर्त्ता नही है—ऐसा अस्तित्वगुण सूचित करता है।

[२] प्रत्येक द्रव्य निरन्तर अपनी ही प्रयोजनभूत क्रिया करता है, इसलिये कोई द्रव्य एकसमय भी अपने कार्य बिना बेकार नहीं होता—ऐसा वस्तुत्वगुण बतलाता है।

[३] प्रत्येक द्रव्य निरन्तर प्रवाह क्रमसे प्रवर्तमान अपनी नई-नई अवस्थाओंको सदैव स्वयं ही बदलता है, इसलिये किसीके कारण पर्याय परिवर्तित हो या रुके ऐसा पराधीन कोई द्रव्य नहीं है—ऐसा द्रव्यत्व गुण बतलाता है।

[४] प्रत्येक द्रव्यमें ज्ञात होने योग्यपना (-प्रमेयत्वगुण) होनेके कारण ज्ञानसे कोई अनजान (गुप्त) नही रह सकता; इसलिये कोई ऐसा माने कि हम अल्पज्ञोंको नव तत्त्व क्या? आत्मा क्या? धर्म क्या?—यह सब ज्ञात नहीं हो सकता; तो उसकी वह मान्यता मिथ्या है; क्योंकि यदि पदार्थ समझका पुरुषार्थ करे तो सत्य और असत्यका स्वरूप (सम्यक् मतिश्रुतज्ञानका विषय होनेसे) उसके ज्ञानमें अवश्य ज्ञात हो—ऐसा प्रमेयत्व गुण बतलाता है।

[५] प्रत्येक द्रव्यका द्रव्यत्व नित व्यवस्थित रहता है, इसलिये एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ नहीं कर सकता; पर्याय द्वारा भी कोई दूसरे पर असर, प्रभाव, प्रेरणा, लाभ-हानि कुछ नहीं कर सकता।

प्रत्येक द्रव्य अपनी क्रमबद्ध धारावाही पर्याय द्वारा अपनेमें ही वर्तता है।--इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य अपनेमें व्यवस्थित नियत मर्यादावाला होनेसे किसी द्रव्यको दूसरेकी आवश्यकता नहीं होती---ऐसा अगुरुलघुत्व गुण बतलाता है।

[६] कोई वस्तु अपने स्वक्षेत्ररूप आकार बिना नहीं होती, और आकार छोटा-बड़ा हो वह लाभ-हानिका कारण नहीं है, तथापि प्रत्येक द्रव्यको स्व-अवगाहनारूप अपना स्वतन्त्र आकार अवश्य होता है---ऐसा प्रदेशत्व गुण बतलाता है।

—इसप्रकार छहों सामान्यगुण प्रत्येक द्रव्यकी स्वतन्त्र व्यवस्था बतलाते हैं ।

विशेष गुण

प्रश्न (१४६)–प्रत्येक द्रव्यमें कौन-कौनसे विशेष गुण हैं ?

उत्तर—[१] जीव द्रव्यमें–चैतन्य (दर्शन-ज्ञान), श्रद्धा (सम्यक्त्व) चारित्र, सुख, वीर्य, क्रियावतीशक्ति, वैभाविकशक्ति आदि ।

[२] पुद्गल द्रव्यमें—स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, क्रियावती शक्ति, वैभाविक शक्ति आदि ।

[३] धर्मास्तिकाय द्रव्यमें—गतिहेतुत्व आदि ।

[४] अधर्मास्तिकाय द्रव्यमें—स्थितिहेतुत्व आदि ।

[५] आकाश द्रव्यमें–अवगाहनहेतुत्व आदि ।

[६] कालद्रव्यमें–परिणमनहेतुत्व आदि ।

प्रश्न (१४८)–चेतन, चैतन्य और चेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—[१] जीव द्रव्यको चैतन कहते हैं ।

[२] चैतन्य वह चेतनद्रव्यका गुण है; उसमें दर्शन और ज्ञान इन दोनों गुणोंका समावेश हो जाता है ।

[३] चैतन्य गुणकी पर्यायको चेतना कहा जाता है ।

[४] चैतन्य गुणको भी चेतना गुण कहा जाता है ।

प्रश्न (१४९)–चेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें पदार्थोंका प्रतिभास हो उसे चेतना कहते हैं ।

प्रश्न (१५०)–चेतनाके कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं–दर्शनचेतना (-दर्शनोपयोग), और ज्ञानचेतना (-ज्ञानोपयोग)

प्रश्न (१५१)—दर्शनचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें पदार्थोंके भेदरहित सामान्य प्रतिभास (अवलोकन) हो उसे दर्शनचेतना कहते हैं जैसे कि ज्ञानका उपयोग घड़ेकी ओर था, वहाँसे छूटकर दूसरे पदार्थ सम्बन्धी ज्ञानोपयोग प्रारम्भ हो उससे पूर्व जो चैतन्यका सामान्य प्रतिभासरूप व्यापार हो वह दर्शनोपयोग है।

प्रश्न (१५२)—ज्ञानचेतना (ज्ञानोपयोग) किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें पदार्थोंका विशेष प्रतिभास हो उसे ज्ञानोपयोग कहते हैं; अर्थात् ज्ञान गुणका अनुसरण करके वर्तनेवाला जो चैतन्य परिणाम वह ज्ञानोपयोग है।

प्रश्न (१५३)—दर्शनचेतनाके कितने भेद हैं ?

उत्तर—चार भेद हैं—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, और केवलदर्शन; वे दर्शनगुणका अनुसरण करके वर्तनेवाले चैतन्य परिणाम हैं।

प्रश्न (१५४)—चक्षुदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर—चक्षुइन्द्रिय द्वारा मतिज्ञान होनेसे पूर्व जो सामान्य प्रतिभास हो उसे चक्षुदर्शन कहते हैं।

प्रश्न (१५५)—अचक्षुदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर—चक्षुइन्द्रियको छोड़कर शेष चार इन्द्रियों और मन द्वारा मतिज्ञान होनेसे पूर्व जो सामान्य प्रतिभास हो उसे अचक्षु-दर्शन कहते हैं।

प्रश्न (१५६)—अवधिदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर—अवधिज्ञान होनेसे पूर्व जो सामान्य प्रतिभास होता है उसे

अवधिदर्शन कहते हैं।

प्रश्न (१५७)–केवलदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर—केवलज्ञानके साथ होनेवाले सामान्य प्रतिभासका केवल-दर्शन कहते हैं।

—[आत्मा स्व-परका दर्शक और ज्ञायक है।]

प्रश्न (१५८)–दर्शनोपयोग कब उत्पन्न होता है ?

उत्तर—छद्मस्थ जीवोंको ज्ञानोपयोगसे पूर्व और केवलज्ञानियोंको ज्ञानोपयोगके साथ ही दर्शनोपयोग होता है।

प्रश्न (१५९)–ज्ञानके कितने भेद है ?

उत्तर—ज्ञान गुण तो नित्य एकरूप ही होता है, किन्तु उसकी सम्यक्-पर्यायके पाँच भेद हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान।—यह पाँचों सम्यक्ज्ञानके भेद हैं।

मिथ्याज्ञानकी तीन पर्यायें हैं—कुमति, कुश्रुत और कुअवधि।—इसप्रकार आठ पर्यायें हुईं।

प्रश्न (१६०)–मतिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—[१] पराश्रयकी बुद्धि छोड़कर दर्शनोपयोग पूर्वक स्व-सन्मुखतासे प्रगट होनेवाले निज आत्माके ज्ञानको मतिज्ञान कहते हैं।

[२] जिसमें इन्द्रिय और मन निमित्तमात्र है–ऐसे ज्ञानको मतिज्ञान कहते हैं।

प्रश्न (१६१)–श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—[१] मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थके सम्बन्धसे अन्य पदार्थको जाननेवाले ज्ञानको श्रुतज्ञान कहते हैं।

[२] आत्माकी शुद्ध अनुभूतिरूप श्रुतज्ञानको भावश्रुतज्ञान कहते हैं।

प्रश्न (१६२)—अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी मर्यादापूर्वक जो रूपी पदार्थों-को स्पष्ट जाने उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

प्रश्न (१६३)—मनःपर्यय ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी मर्यादा पूर्वक अन्यके मनमें तिष्ठते हुए रूपी पदार्थ सम्बन्धी विचारोंको तथा रूपी पदार्थों-को स्पष्ट जाने उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।

(श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानसे सिद्ध होता है कि प्रत्येक द्रव्यमें क्रमबद्ध पर्याय होती है—आगे पीछे नही होते।)

प्रश्न (१६४)—केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो तीनलोक-तीनकालवर्ती सर्व पदार्थोंको (अनन्त-धर्मा-त्मक* सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायोंको) प्रत्येक समयमें यथास्थित परिपूर्णरूपसे स्पष्ट और एकसाथ जाने उसे केवलज्ञान कहते हैं।

* द्रव्य, गुण, पर्यायोंको केवली भगवान जानते हैं, किन्तु उनके अपेक्षित धर्मोंको नहीं जान सकते—ऐसा मानना असत्य है। वे अनंतको अथवा मात्र अपने आत्माको ही जानते हैं। किन्तु सर्वको नहीं जानते—ऐसा मानना भी न्यायसे विरुद्ध है। केवलज्ञानी भगवान सर्वज्ञ होनेसे अनेकान्तात्मक प्रत्येक वस्तुको प्रत्यक्ष जानते हैं। केवलीके ज्ञानमें कुछ भी ज्ञात हुए बिना नहीं रहता।

प्रश्न (१६५)–श्रद्धा गुण (सम्यक्त्व) किसे कहते हैं ?

उत्तर—[१] जिस गुणकी निर्मलदशा प्रगट होनेसे अपने शुद्ध आत्माका प्रतिभास (यथार्थ प्रतीति) हो उसे श्रद्धा (सम्यक्त्व) कहते है।

[२] सम्यक्‌दृष्टिको निम्नानुसार प्रतीति होती है:—

१–सच्चा देव, गुरु और धर्ममें दृढ प्रतीति।

२–जीवादि सात तत्त्वोंकी सच्ची प्रतीति।

३–स्व-परका श्रद्धान।

४–आत्मश्रद्धान।

उपरोक्त लक्षणोंके अविनाभाव सहित जो श्रद्धा होती है वह निश्चय सम्यक्‌दर्शन है। [इस पर्यायका धारक श्रद्धा (सम्यक्त्व) गुण है; सम्यक्‌दर्शन और मिथ्यादर्शन उसकी पर्यायें है।]

प्रश्न (१६६)–चारित्र गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—निश्चय सम्यक्‌दर्शन सहित स्वरूपमें विचरण-रमण करना अपने स्वभावमें अकषाय प्रवृत्ति करना वह चारित्र है। वह चारित्र मिथ्यात्व और अस्थिरता रहित अत्यन्त निर्विकार* ऐसा जीवका परिणाम है, और ऐसी पर्यायोंको धारण करने–वाले गुणको चारित्र गुण कहते हैं।

प्रश्न (१६७)–सुख गुण किसे कहते हैं ?

---

* ऐसे परिणामोंको स्वरूप स्थिरता, निश्चलता, वीतरागता, साम्य, धर्म और चारित्र कहते हैं। जब आत्माके चारित्र गुणकी ऐसी शुद्ध पर्याय उत्पन्न होती है तब बाह्य और अभ्यन्तर क्रियाका यथासम्भव (भूमिकानुसार) निरोध होजाता है।

उत्तर—निराकुल आनन्दस्वरूप आत्माके परिणाम विशेषको सुख कहते हैं, और वह पर्याय धारण करनेवाले गुणको सुख गुण कहते हैं।

आत्मामें सुख अथवा आनन्द नामका एक अनादि-अनन्त गुण है। उसका सम्यक् परिणमन होनेपर मन, इन्द्रियाँ और उनके विषयोंसे निरपेक्ष अपने आत्माश्रित निराकुलता लक्षणवाला सुख उत्पन्न होता है। उसके कारणरूप शक्ति वह सुख गुण है।

अनाकुलता जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है ऐसी सुख शक्ति आत्मामें नित्य है। [समयसारमें वर्णित ४७ शक्तियोंमेंसे]

प्रश्न (१६८)—क्रियावती शक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर—जीव और पुद्गल द्रव्यमें क्रियावती शक्ति नामका विशेष गुण है। उसके कारण जीव और पुद्गलको अपनी-अपनी योग्यतानुसार कभी गमन-क्षेत्रान्तर—गतिरूप पर्याय होती है और कभी स्थिरतारूप।

[कोई द्रव्य (जीव या पुद्गल) एक-दूसरेको गमन या स्थिरतारूप नहीं कर सकते। दोनों द्रव्य अपनी क्रियावती शक्तिका उस समयकी योग्यतानुसार स्वतः गमन करते हैं या स्थिर रहते हैं।]

प्रश्न (१६९)—मोटर पेट्रोलसे चलती है या उसे ड्राइवर चलाता है?

उत्तर—मोटर पेट्रोल या ड्राइवरसे नहीं चलती; किन्तु उसके प्रत्येक परमाणुमें क्रियावती शक्ति है अपने क्षणिक उपादानको

योग्यतासे ही वह चलती है। स्थिर रहने योग्य हो उससमय अपनी क्रियावती शक्तिके कारण ही वह स्थिर रहती है—अन्य तो निमित्त मात्र हैं। निमित्तसे उपादानका कार्य नहीं होता किन्तु संयोगका ज्ञान करानेके लिये उपचारसे वैसा कथन होता है।

प्रश्न (१७०)–"सिद्ध भगवान हुए वह लोकाग्रमें ही स्थिर हैं; वे सचमुच धर्मास्तिकायके अभावसे लोकके ऊपर नहीं जाते"– यह बराबर है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि जो जीव सिद्ध परमात्मदशा प्रगट करे वह भी लोकका द्रव्य है, इसलिये वह एक समयमें लोक पर्यंत जानेकी ही खास योग्यता रखता है। धर्मास्तिकायके अभावको उसका कारण कहना वह निमित्तका ज्ञान करानेके लिये व्यवहारनयका कथन है; निश्चयसे वैसी योग्यता ही न हो तो निमित्तमे इसप्रकार कारणपनेका आरोप नहीं आ सकता।

प्रश्न (१७१)–वीर्य गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्माकी शक्ति-सामर्थ्य [बल] को वीर्य कहते है;

—अर्थात्—

स्वरूप रचनाके सामर्थ्यरूप शक्तिको वीर्य गुण कहते हैं।

—(समयसार–४७ शक्तियोंसे)

अर्थात्

पुरुषार्थरूप परिणामोंके कारणभूत जीवकी त्रिकाली शक्तिको वीर्य गुण कहते हैं।

प्रश्न (१७२)–भव्यत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस गुणके कारण आत्मामें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करनेकी योग्यता रहती है उस गुणको भव्यत्व गुण कहते हैं।

[भव्यत्व गुण सदैव भव्य जीवोंमें ही है और अभव्यत्व गुण सदेव अभव्य जीवोंमें है]

प्रश्न (१७३)—अभव्य गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस गुणके कारण आत्मामें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करनेकी योग्यता नहीं होती उसे अभव्यत्व गुण कहते है।

प्रश्न (१७४)—जीवत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्म द्रव्यके कारणभूत चैतन्यमात्र भावरूप भावप्राणका धारण करना जिसका लक्षण है उस शक्तिको जीवत्व गुण कहते हैं।

प्रश्न (१७५)—प्राणके कितने भेद है ?

उत्तर—दो भेद है—द्रव्य प्राण और भाव प्राण।

प्रश्न (१७६)—द्रव्य प्राणके कितने भेद हैं ?

उत्तर—दस भेद हैं—पाँच इन्द्रियाँ, तीन बल, श्वासोच्छ्वास और आयु।

—[यह पुद्गल द्रव्यकी पर्यायें हैं। इन द्रव्य प्राणोंके संयोग-वियोगसे जीवोंकी जीवन-मरणरूप दशा व्यवहारसे कहलाती है।]

प्रश्न (१७७)—भाव प्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर—चैतन्य और [भाव] बल प्राणको भावप्राण कहते हैं।

प्रश्न (१७८)—भावप्राणके कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—भावेन्द्रिय और बलप्राण। यह भेद संसारी जीवोंमें हैं। भावेन्द्रियाँ सब चेतन हैं और वे ज्ञानकी मतिरूप पर्यायें हैं भाव बलप्राण जीवके वीर्य गुणकी पर्याय है और द्रव्य बलप्राण पुद्गलोंकी पर्याय है।

प्रश्न (१७९)—भावेन्द्रियके कितने भेद हैं ?

उत्तर—पाँच भेद है—जीवकी भाव स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुन्द्रिय, और कर्णेन्द्रिय,—वे लब्धि और उपयोगरूप हैं।

प्रश्न (१८०)—भाव बलप्राणके कितने भेद है ?

उत्तर—तीन भेद है—मनबल, वचनबल और कायबल।

प्रश्न (१८१)—वैभाविक शक्ति किसे कहते है ?

उत्तर—वह एक विशेष भाववाला गुण है। उस गुणके कारण परद्रव्य (निमित्त) के सम्बन्ध पूर्वक स्वयं अपनी योग्यतासे अशुद्ध पर्यायें होती है।

—यह वैभाविक शक्ति नामका गुण जीव और पुद्गल दो द्रव्योंमें ही है, शेष चार द्रव्योंमें नहीं है।

जीवके गुणोंमें स्वयंसिद्ध एक वैभाविक शक्ति है; वह जीवकी संसारदशामें अपने कारण स्वय ही (अनादिकालसे) विकृत हो रही है। —[पंचाध्यायी–भाग २, गाथा ९४६]

मुक्तदशामें वैभाविक शक्तिका शुद्ध परिणमन होता है।

—[पंचाध्यायी–भाग २, गाथा ८१]

मुक्त-स्वतन्त्र पुद्गल परमाणु जबतक स्वतन्त्र (अबंध पर्यायरूप) रहें तब तक उनके इस गुणकी भी शुद्ध पर्याय होती है।

प्रश्न (१८२)—इस वैभाविक शक्तिसे क्या समझना ?

उत्तर—जीवकी वैभाविक शक्ति वह गुण है, इसलिये बंधका कारण नहीं है; उसका परिणमन भी बंधका कारण नहीं है; क्योंकि उसका परिणमन तो सिद्ध भगवन्तोंके भी होता है।

यदि जीव परपदार्थोंके वश हो जाये तो उसकी पर्यायमें विकार (अशुद्धता) होता है; वह जीवका अपना अपराध है। जीव जिस परपदार्थके वश होता है उसे निमित्त कहा जाता है। जीवने विकार किया (स्वयं अशुद्ध भावरूप परिणमित हुआ) तब किस परपदार्थके वश हुआ वह बतलानेके लिये उन परपदार्थोंको निमित्तकारण और विकारको नैमित्तिक (कार्य) कहा जाता है। यह कथन भेदज्ञान करानेके लिये है; किन्तु निमित्तने नैमित्तिक पर कुछ असर किया अथवा प्रभाव डाला—ऐसा बतलानेके लिये वह कथन नहीं है; क्योंकि ऐसा माना जाये तो दो द्रव्योंकी एकता माननेरूप मिथ्यात्व हो जाता है; इसलिये ऐसा समझना चाहिये कि जीवके अपने दोषसे ही अशुद्धता होती है और उसे जीव स्वयं करता है इसलिये वह दूर भी की जा सकती है।

जीव विकार (अशुद्ध दशा) अपने दोषसे ही करता है, इसलिये अशुद्ध निश्चयनयसे वह स्वकृत है किन्तु स्वभाव दृष्टिके पुरुषार्थ द्वारा उसे अपनेमेंसे दूर किया जा सकता है, इसलिये शुद्ध निश्चयनयसे वह परकृत है।

इन विकारोंको शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिसे निम्नोक्त नामों द्वारा पहिचाना जाता है:—

परकृत, परभाव, पराकार, पुद्गलभाव, कर्मजन्य भाव, प्रकृति शील स्वभाव, पर द्रव्य, कर्मकृत, तद्गुणाकार संक्रान्ति, परगुणाकार कर्मपदस्थित, जीवमें होनेवाले अजीवभाव, तद्-गुणाकृति, परयोगकृत, निमित्तकृत, आदि। किन्तु उससे वे परकृतादि नहीं हो जाते; मात्र अपनेमेंसे टाले जा सकते हैं इतना ही वे दर्शाते हैं।

—(देखो, गुजराती आवृत्ति पंचाध्यायी–भाग २. गाथा ७२ का भावार्थ)

उस पर्यायमें अपना ही दोष है, अन्य किसीका उसमे किन्चित् हाथ या दोष नहीं है। पंचाध्यायी–भाग २ की ६० वीं और ५६ वीं गाथामें—"जीव स्वय ही अपराधी है"– ऐसा कहा है; इसलिये पर द्रव्य या कर्मका उदय जीवमे विकार करे—कराये, अथवा कर्मोदयके कारण जीवको विकार करना पड़ता है—ऐसी मान्यता मिथ्या है। निमित्त कारण तो उपचरित कारण है किन्तु वास्तविक कारण नहीं है; इसलिये उसे पंचाध्यायी–भाग २, गाथा ३५१ में अहेतुवत्—अकारणवत् कहा है।

प्रश्न (१८३)–ऐसे कौनसे विशेष गुण हैं जो दो द्रव्योंमें हो रहें ?

उत्तर—क्रियावतो शक्ति और वैभाविक शक्ति—यह दो गुण जीव और पुद्गल द्रव्योंमें ही रहते हैं।

प्रश्न (१८४)–क्रियावती शक्तिका क्या कार्य है ?

उत्तर—एक क्षेत्रसे क्षेत्रान्तर होना अथवा गतिपूर्वक स्थिररूपसे रहना।

प्रश्न (१८५)–क्रियावती शक्ति जाननेसे धर्म सम्बन्धी क्या लाभ होगा ?

उत्तर—मैं शरीरको चला सकता हूँ, स्थिर रख सकता हूँ, शरीर मुझे अन्य क्षेत्रमें ले जाता है, मैं यह बोझ उठाता हूँ इत्यादि गति-स्थितिकी (परके क्षेत्रान्तर होने और स्थिर रहनेकी) स्वतन्त्रता न माननेरूप घोर अज्ञान दूर हो जाये और अपने ज्ञाता स्वभावसे मैं सदैव ज्ञायक स्वरूप ही हूँ–ऐसा सच्चा निर्णय हो वही धर्मका मूल है।

प्रश्न (१८६)–अगर जीव शरीरको नही चलाता, तो फिर मुर्दा क्यों नही चलता ?

उत्तर—मुर्दा पुद्गल द्रव्यके अनेक स्कन्धोंका पिण्ड है; उसके प्रत्येक परमाणुमें क्रियावती शक्ति है, इसलिये उसकी अपनी योग्यतानुसार किसी समय उस परमाणुकी गति अर्थात् क्षेत्रान्तररूप पर्याय होती है;–और कभी स्थिर रहनेरूप पर्याय होती है इस प्रकार मुर्देके परमाणुओंकी उस समयकी अपनी योग्यताके कारण स्थिरतारूप पर्याय होती है, इसलिये वह चलता नही है।

जब वह घरसे बाहर निकलता दिखाई देता है उससमय उसका जाना उसकी अपनी क्रियावतीशक्तिके कारण है; मनुष्य वगैरह तो निमित्तमात्र हैं।

प्रश्न (१८७)–चैतन्य गुण गति कर सकता है ?

उत्तर—हाँ, जब जीव क्षेत्रान्तररूप गमन करता है तब चैतन्यगुण (दर्शन और ज्ञान गुण) जीवके साथ अभेद होनेसे उसका भी गमन होता है; उसमें जीवकी क्रियावती शक्ति निमित्त है।

प्रश्न (१८८)–वर्ण गुण गमन कर सकता है ?

उत्तर—हाँ, पुद्गल द्रव्य अपनी क्रियावती शक्तिसे गमन करता है। वर्ण गुण उसके साथ अभेद होनेसे वह भी गमन करता है।

प्रश्न (१८९)—गतिहेतुत्व गुण एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाता है?

उत्तर—नहीं जाता; क्योंकि गतिहेतुत्व धर्मास्तिकाय द्रव्यका गुण है और वह द्रव्य तो त्रिकाल स्थिर रहनेवाला है; उसमें क्रियावती शक्ति नहीं है।

प्रश्न (१९०)—तो फिर गतिहेतुत्वका अर्थ क्या ?

उत्तर—जब जीव और पुद्गल स्वयं अपनी क्रियावती शक्तिके कारण गतिरूप परिणमित हों उस समय उन्हें लोकमें स्थिर और सर्वव्यापक धर्म द्रव्यका वह गुण निमित्त होता है। यही गतिहेतुत्वका अर्थ है।

प्रश्न (१९१)—गतिहेतुत्व गुण स्वयं अपने साथ रहनेवाले अन्य गुणोंको गति करनेमें निमित्त है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि धर्मास्तिकाय स्वयं सदैव स्थिर है, इसलिये उसके गुण भी गति करते ही नहीं; वे तो स्वयं गमनरूप परिणमित होनेवाले जीवों—पुद्गलोंको ही गतिमें निमित्त हैं।

प्रश्न (१९२)—आकाश, धर्मद्रव्य और कालद्रव्य तो स्थिर हैं, तो क्या उन्हे अधर्म द्रव्यका निमित्त है ?

उत्तर—नहीं; क्योकि वे कभी भी गतिपूर्वक स्थिर रहनेवाले द्रव्य नहीं है किन्तु त्रिकाल स्थिर हैं।

प्रश्न (१९३)—स्वयं अपनेको तथा परको निमित्त हों ऐसे द्रव्य कौनसे हैं ?

उत्तर—आकाश और काल द्रव्य।

प्रश्न (१९४)—भूकम्प, समुद्रमें आनेवाला ज्वार-भाटा, ज्वालामुखी

पर्वतका फटना, लावा रसका प्रवाह—इनका यथार्थ कारण क्या है ?

उत्तर—वे सब पुद्गल द्रव्यकी स्कंधरूप पर्यायें है, और उन-उन द्रव्यों-के द्रव्यत्व गुण तथा क्रियावती शक्तिके कारण वे अवस्थाएँ होती हैं।

प्रश्न (१६५)–पेट्रोल खत्म हुआ और मोटर रुक गई, उसमें मोटर रुकनेका कारण क्या ?

उत्तर—मोटर उस कालकी अपनी क्रियावती शक्तिके स्थिरतारूप परिणामके कारण रुकी है; उसमें पेट्रोलका खत्म होना तो निमित्तमात्र है।

प्रश्न (१६६)–रेलगाड़ी भापसे चलती है यह ठीक है ?

उत्तर—नहीं; उसके चलनेमें उसकी अपनी क्रियावती शक्तिका क्षेत्रान्तररूप परिणमन है वह सच्चा कारण है; भाप आदि तो निमित्तमात्र हैं।

प्रश्न (१६७)–वृक्षसे फल नीचे गिरा, उसमें पृथ्वीकी आकर्षणशक्ति कारण है—यह सिद्धान्त बराबर है ?

उत्तर—नहीं; वह अपने परमाणुओंकी क्रियावती शक्तिके गमनरूप परिणमनके कारण गिरता है, फलके डंठलका सड़ जाना, हवा-का चलना आदि तो निमित्तमात्र हैं।

प्रश्न (१६८)–फव्वारेका पानी ऊपर उछलता है और झरनेका पानी नीचेकी ओर गिरता है—इसका क्या कारण ?

उत्तर—दोनोंमें उन-उन परमाणुओंकी क्रियावती शक्तिका गमनरूप परिणमन कारण है।

अनुजीवी और प्रतिजीवी गुण

प्रश्न (१९९)–अनुजीवी गुण किसे कहते हैं।

उत्तर—भाव स्वरूप गुणोंको अनुजीवी गुण कहते हैं; जैसे कि—जीवके अनुजीवी गुण—चेतना (दर्शन-ज्ञान) श्रद्धा, चरित्र, सुख आदि; और पुद्गलके अनुजीवी गुण—स्पर्श, रस, गंध वर्ण आदि।

प्रश्न (२००)–प्रतिजीवी गुण किसे कहते है ?

उत्तर—वस्तुके अभाव स्वरूप धर्मको प्रतिजीवी गुण कहते हैं; जैसे कि—नास्तित्व, अमूर्तत्व, अचेतनत्व आदि।

प्रश्न (२०१)–जीवके अनुजीवी गुण कौन-कौनसे हैं ?

उत्तर—चेतना (दर्शन, ज्ञान), श्रद्धा (सम्यक्त्व), चारित्र, सुख, वीर्य, भव्यत्व, अभव्यत्व, जीवत्व, वैभाविकत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, क्रियावतीशक्ति–आदि अनन्त गुण।

प्रश्न (२०२)–जीवके प्रतिजीवी गुण कौन-कौनसे हैं ?

उत्तर—अव्याबाधत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, सूक्ष्मत्व, नास्तित्व, इत्यादि।

प्रश्न (२०३)–अव्याबाध प्रतिजीवी गुण किसे कहते है ?

उत्तर—वेदनीय कर्मके अभावपूर्वक जिस गुणकी शुद्धपर्याय प्रगट होती है उसे (उस गुणको) अव्याबाध प्रतिजीवी गुण कहते है।

प्रश्न (२०४)–अवगाहनत्व प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—आयुकर्मके अभावपूर्वक जिस गुणकी शुद्धपर्याय प्रगट होती है उसे [उस गुणको] अवगाहनत्व प्रतिजीवी गुण कहते हैं।

प्रश्न (२०५)–अगुरुलघुत्व प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—गोत्रकर्मके अभावपूर्वक जिस गुणकी शुद्धपर्याय प्रगट होती है और उच्च-नीचका व्यवहार भी दूर होता है उसे अगुरुलघुत्व-गुण कहते हैं।

प्रश्न (२०६)—सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—नामकर्मके अभावपूर्वक जिस गुणकी शुद्धपर्याय प्रगट होती है उसे सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण कहते हैं।

प्रश्न (२०७)—दो ही द्रव्योंको लागू होते हैं—ऐसे अनुजीवी गुण कौनसे हैं ?

उत्तर—क्रियावती शक्ति और वैभाविक शक्ति—यह दोनों गुण जीव और पुद्गल द्रव्यमें ही हैं।

प्रश्न (२०८)—अजड़त्व किस द्रव्यका प्रतिजीवी गुण है ?

उत्तर—जीव द्रव्यका।

प्रश्न (२०९)—जड़त्व किसका अनुजीवी गुण है ?

उत्तर—पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल द्रव्यका।

प्रश्न (२१०)—अचेतनपना और अमूर्तपना—यह दोनों प्रतिजीवी गुण एक साथ किन द्रव्योंमें हैं ?

उत्तर—धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यमें।

प्रकरण तीसरा

पर्याय अधिकार

प्रश्न (२११)–पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—गुणके विशेष कार्यको (परिणमनको) पर्याय कहते हैं।

प्रश्न (२१२)–पर्यायके कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो-व्यंजनपर्याय और अर्थपर्याय ।

प्रश्न (२१३)–व्यंजन पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्यके प्रदेशत्व गुणके विशेष कार्यको व्यंजनपर्याय कहते हैं।

प्रश्न (२१४)–व्यंजन पर्यायके कितने भेद है ?

उत्तर—दो—स्वभावव्यंजनपर्याय और विभावव्यंजनपर्याय ।

प्रश्न (२१५)–स्वभावव्यजनपर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—परनिमित्तके सम्बन्धरहित द्रव्यका जो आकार हो उसे स्वभावव्यंजनपर्याय कहते हैं; जैसे कि–सिद्ध भगवानका आकार।

प्रश्न (२१६)–विभावव्यंजन पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—परनिमित्तके सम्बन्धवाले द्रव्यका जो आकार हो उसे विभावव्यंजन पर्याय कहते हैं; जैसे कि–जीवकी नर–नरकादि पर्यायें ।

प्रश्न (२१७)–अर्थ पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रदेशत्व गुणके अतिरिक्त शेष सम्पूर्ण गुणोंके विशेष कार्यको अर्थपर्याय कहते हैं।

प्रश्न (२१८)–अर्थपर्यायके कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद—स्वभावअर्थपर्याय और विभावअर्थपर्याय।

प्रश्न (२१९)–स्वभावअर्थपर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—परनिमित्तके सम्बन्ध रहित जो अर्थ पर्याय होती है उसे स्वभावअर्थपर्याय कहते हैं, जैसे कि–जीवका केवलज्ञानपर्याय।

प्रश्न (२२०)–विभावअर्थपर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—परनिमित्तके सम्बन्धवाली जो अर्थपर्याय होती है उसे विभावअर्थपर्याय कहते हैं; जैसे कि–जीवको राग द्वेषादि।

प्रश्न (२२१)–किन किन द्रव्योंमें कौन-कौनसी पर्यायें होती हैं ?

उत्तर—(अ) जीव और पुद्गल द्रव्योंमें चार पर्यायें होती हैं—

[१] स्वभावअर्थपर्याय, [२] विभावअर्थपर्याय, [३] स्वभाव व्यंजनपर्याय, [४] विभावव्यंजनपर्याय।

(ब) धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्योंमें सिर्फ दो पर्यायें हैं:—

[१] स्वभावअर्थपर्याय, [२] स्वभावव्यंजनपर्याय।

प्रश्न (२२२)–"आकार" क्या अर्थ है ?

उत्तर—आकार प्रदेशत्व गुणकी व्यंजनपर्याय है, इसलिये वह द्रव्यके सम्पूर्ण भागमें होती है। द्रव्यकी मात्र बाह्याकृतिको आकार नहीं कहा जाता, किन्तु उसके कद्र (Volume) को आकार कहा जाता है।

प्रश्न (२२३)–जीवका आकार किसप्रकार संकोच-विस्तारको प्राप्त होता है वह दृष्टान्तपूर्वक समझाइये।

उत्तर—(१) भीगे-सूखे चमड़ेकी भाँति जीवके प्रदेश अपनी शक्तिसे संकोच-विस्ताररूप होते हैं।

(२) छोटे-बड़े शरीर प्रमाण संकोच-विस्तार होनेपर भी और अपने एक-एक प्रदेशमें अपने दूसरे प्रदेश अवगाहना प्राप्त करनेपर भी मध्यके आठ—रुचकादिप्रदेश सदैव अचलित रहते हैं; अर्थात् एक दूसरेमें अवगाहनाको प्राप्त नहीं होते।

प्रश्न (२२४)—सिद्धदशामें जीवका आकार कितना और कैसा होता है ?

उत्तर—सिद्धका आकार अन्तिम शरीरसे किंचित् न्यून और पुरुषाकार होता है।

(बृहत् द्रव्यसंग्रह, गाथा १४, ५१ तथा टीका)

प्रश्न (२२५)—समान आकारवाले द्रव्य कौनसे हैं ?

उत्तर—१—कालाणु और परमाणु पुद्गल द्रव्य;

२—धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय।

प्रश्न (२२६)—सबसे बड़ा आकार, सबसे छोटा आकार और उन दोनोंके बीचवाले आकारके कौनसे द्रव्य हैं ?

उत्तर—सबसे बड़ा आकार अनंत प्रदेशात्मक आकाशका और सबसे छोटा आकार एक प्रदेशी परमाणु तथा कालाणुका होता है। उन दोनोंके बीचके आकारवाले असंख्य प्रदेशी जीव द्रव्य, धर्मास्तिकाय तथा अधर्मास्तिकाय होते हैं।

प्रश्न (२२७)—प्रत्येक द्रव्यमें कौन-सी पर्याय एक और कौन-सी अनंत होती हैं ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्यमें प्रदेशत्व गुणके कारण व्यन्जनपर्याय एक होती है और उस (द्रव्य) में अनंत गुण होनेसे उसकी अर्थपर्यायें अनंत होती हैं।

प्रश्न (२२८)—जीवद्रव्यमें विभावव्यंजन पर्याय कहाँ तक होती हैं?

उत्तर—चौदहवें गुणस्थान*तक सर्व संसारी जीवोंको विभावव्यंजन-पर्याय होती है, क्योंकि वहाँ तक जीवका पर-निमित्त (पौद्गलिक कर्म)के साथ सम्बन्ध रहता है।

प्रश्न (२२९)—सादि अनन्त स्वभावव्यंजनपर्याय और सादि अनंत स्वभाव-अर्थ पर्याय किसको होती है।

उत्तर—सिद्ध भगवानको; क्योंकि उनके विकार और परनिमित्त-का सम्बन्ध सर्वथा छूट गया है।

प्रश्न (२३०)—आकारमें (व्यंजनपर्यायमें) अन्तर होनेपर भी अर्थ-पर्यायमें समानता हो—ऐसे द्रव्य कौनसे और कितने हैं?

उत्तर—ऐसे सिद्ध भगवान हैं और वे अनंत हैं।

प्रश्न (२३१)—त्रिकाल स्वभावअर्थपर्याय और स्वभावव्यंजनपर्याय किन द्रव्योंके होती है?

उत्तर—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल—इन चार द्रव्योंके होती है।

प्रश्न (२३२)—पहिले अर्थपर्याय शुद्ध हो और फिर व्यंजनपर्याय शुद्ध हो—ऐसा किन द्रव्योंमें होता है?

---

* मोह और योगके निमित्तसे सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान और सम्यक्‌चारित्ररूप आत्माके गुणोंकी तारतम्यतारूप अवस्था-विशेषको गुणस्थान कहते हैं। गुणस्थान १४ हैं;—१-मिथ्यात्व, २-सासादन, ३-मिश्र, ४-अविरत सम्यग्दृष्टि, ५-देशविरति, ६-प्रमत्तविरत, ७-अप्रमत्त विरत, ८-अपूर्वकरण, ९-अनिवृत्तिकरण, १०-सूक्ष्मसाम्पराय, ११-उपशांतमोह, १२-क्षीणमोह, १३-सयोगीकेवली, १४-अयोगी केवली।

उत्तर—ऐसा जीव द्रव्यमें होता है, जैसे कि–चौथे गुणस्थानमें श्रद्धा गुणकी पर्याय पहले शुद्ध होती है; बारहवें गुणस्थानमें चारित्र गुणकी अर्थपर्याय शुद्ध होती है; तेरहवें गुणस्थानमें ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य गुणोंकी पर्यायें परिपूर्ण शुद्ध होती हैं; चौदहवें गुणस्थानमें योग–गुणकी पर्याय शुद्ध होती है, और सिद्ध दशा होनेपर वैभाविक गुण, क्रियावती शक्ति तथा चार प्रतिजीवी गुण–अव्याबाध, अवगाहनत्व; अगुरुलघुत्व, सूक्ष्मत्व–इत्यादिकी अर्थपर्यायें शुद्ध होती हैं; और उसीसमय व्यंजन पर्याय (प्रदेशत्व गुणकी पर्याय) शुद्ध होती हैं, किन्तु वे पहिले शुद्ध नहीं होतीं।

प्रश्न (२३३)–सादिसांत स्वभावअर्थपर्याय और स्वभावव्यंजन-पर्याय किस द्रव्यके एक साथ होती हैं ?

उत्तर—एक पुद्गल परमाणुके वे दोनों एक साथ होती हैं। जब वह स्कन्धमेंसे पृथक् होता है तब शुद्ध होता है, लेकिन जब पुनः स्कन्धरूप परिणमित होता है तब वह अशुद्ध हो जाता है।

प्रश्न (२३४)–सवा पाँचसौ धनुषकी बड़ी अवगाहनावाले (आकार-वाले सिद्ध भगवन्तोंको अधिक आनन्द और छोटी अवगाहना-वाले सिद्धोंको कम आनन्द—ऐसा होता होगा ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि सिद्धोंका आनन्द तो सुखगुणकी स्वभावअर्थ–पर्याय है, इसलिये सर्व सिद्ध भगवन्तोंको सदैव एक-सा ही अनन्त सुख (आनन्द) होता है। सुखका व्यंजन पर्याय (क्षेत्र–आकार)के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न (२३५)–द्रव्य गुण और पर्याय–इन तीनोंमें सत् कौन है ? किस प्रकार है ?

उत्तर—तीनों सत् हैं। सत् द्रव्य, सत् गुण और सत् पर्याय–इस-प्रकार सत्ता गुणका विस्तार है; उसमें सदृश सामान्य सत् द्रव्य तथा गुण नित्य सत् और पर्याय एक समय पर्यन्त अनित्य सत् है। (–प्रवचनसार गाथा १०७)

प्रश्न (२३६)–उत्पाद किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्यमें नवीन पर्यायकी उत्पत्तिको उत्पाद कहते हैं।

प्रश्न (२३७)–व्यय किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्यके पूर्व पर्यायके त्यागको व्यय कहते हैं।

प्रश्न (२३८)–ध्रौव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रत्यभिज्ञान*के कारणभूत द्रव्यकी किसी अवस्थाकी नित्यताको ध्रौव्य कहते हैं।

प्रश्न (२३९)–उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य एक समयमें ही होते हैं या भिन्न–भिन्न समयमें ?

उत्तर—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य—यह तीनों एक ही समयमें साथ ही वर्तते हैं ?

प्रश्न (२४०)–वर्तमान अज्ञान दूर होकर सच्चा ज्ञान होनेमें कितना काल लगता है ?

उत्तर—एक समय, क्योंकि पर्याय प्रतिसमय बदलती है।

प्रश्न (२४१)–पर्यायें काहेमेंसे उत्पन्न होती हैं ?

उत्तर—द्रव्य तथा गुणोंसे पर्यायें उत्पन्न होती हैं।

[प्रवचनसार गाथा ९३]

---

* स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थोंमें एकरूप ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं; जैसे कि–यह वही व्यक्ति है जिसे कल देखा था।

प्रश्न (२४२)-पर्याय तो अनित्य है; तो वह सत् है या असत् ?

उत्तर—सत् द्रव्य, सत् गुण और सत् पर्याय-इसप्रकार सत्का विस्तार है; इसलिये पर्याय भी एक समय पर्यंत सत् है।
—[प्रवचनसार गाथा १०७]

प्रश्न (२४३)-गुण अंश है या अंशी ?

उत्तर—द्रव्यकी अपेक्षासे गुण उस द्रव्यका अंश है और पर्यायकी अपेक्षासे वह अशी है ।

प्रश्न (२४४)-पर्याय किसका अंश है ?

उत्तर—वह गुणका एक समय पर्यंतका अंश है, इसलिये द्रव्यका भी एक समय पर्यन्तका अंश है।

प्रश्न (२४५)-पुद्गल परमाणु आदि पाँच अजीव (अचेतन) द्रव्य हैं वे कुछ जानते नहीं हैं, तो वे किसीके आधार बिना कैसे व्यवस्थित रह सकते हैं ?

उत्तर—वे अस्तित्वादि गुण युक्त तथा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप सत् लक्षणवान् होनेसे उन्हें किसीके आधारकी आवश्यकता नही है। स्व सत्ताके आधारसे उनके निरन्तर क्रमबद्ध उत्पाद-व्ययरूप व्यवस्थित पर्याय होती ही रहती है।

प्रश्न (२४६)-क्षेत्र और कालकी अपेक्षासे द्रव्य-गुण-पर्यायकी तुलना करो।

उत्तर—[१] तीनोंका क्षेत्र समान अर्थात् एक ही है ।
[२] कालकी अपेक्षासे द्रव्य-गुण त्रिकाल और पर्याय एक-समय जितनी है।

प्रश्न (२४७)-द्रव्य-गुण-पर्याय—इन तीनोंमेंसे ज्ञात होने योग्य (प्रमेय) कौन-कौन हैं ?

उत्तर—तीनों ज्ञात होने योग्य (प्रमेय-ज्ञेय) हैं।

प्रश्न (२४८)–द्रव्यकी भूतकालकी पर्यायोंकी संख्या अधिक है या आगामी [भविष्य] कालकी पर्यायोंकी ?

उत्तर—"द्रव्यकी पर्यायोंमें अतीत [भूतकालीन] पर्यायें अनंत हैं; अनागत [भविष्यकालीन] पर्यायें उनसे भी अनन्त गुनी हैं; और वर्तमान पर्याय एक ही है। सर्व द्रव्योंके अनन्त समयरूप भूतकाल तथा उससे अनन्तगुने समयरूप भविष्यकाल है।"

—[स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा २२१ मूल, तथा गाथा ३०२ का भावार्थ]

भूतकालसे भविष्यकाल एकसमय अधिक है और भविष्यकालकी अपेक्षा भूतकाल एकसमय न्यून है—ऐसी मान्यता यथार्थ नहीं है।

प्रश्न (२४९)–छहों द्रव्योंमें द्रव्य–गुण–पर्याय जाननेका क्या फल ?

उत्तर—स्व-परका भेदज्ञान और पर पदार्थोंकी कर्तृत्वबुद्धिका अभाव होता है—वह जाननेका फल है ?

प्रश्न (२५०)–स्कंध किसे कहते हैं ? यह किसकी कौनसी पर्याय है ?

उत्तर—दो अथवा दो से अधिक परमाणुओंके बंधको स्कंध कहते हैं; वह पुद्गल द्रव्यकी विभावअर्थपर्याय है।

प्रश्न (२५१)–बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनेक वस्तुओंमें एकत्वका ज्ञान करानेवाले सम्बन्ध विशेषको बन्ध कहते हैं।

प्रश्न (२५२)–स्कन्धके कितने भेद हैं ?

उत्तर—आहारवर्गणा, तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा, कार्मणवर्गणा आदि २२ भेद हैं।*

---

* श्री गोमट्टसार जीवकांड गाथा ५९३-९४ में २३ वर्गणा कही है:— १-अणुवर्गणा' २-संख्याताणुवर्गणा, ३-असंख्याताणुवर्गणा, ४-अनं-

प्रश्न (२५३)–आहारवर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो पुद्गल स्कन्ध औदारिक वैक्रियिक और आहारक—इन तीन शरीरोंरूप परिणमन करता है उसे आहारवर्गणा कहते हैं।

प्रश्न (२५४)–तैजसवर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस वर्गणासे तैजस शरीर बनता है उसे तैजसवर्गणा कहते हैं।

प्रश्न (२५५)–भाषावर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो वर्गणा (पुद्गल स्कन्ध) शब्दरूप परिणमित होती है उसे भाषावर्गणा कहते हैं।

प्रश्न (२५६)–मनोवर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस पुद्गल स्कन्धसे आठ पँखुड़ियोंवाले कमलके आकारवाले द्रव्यमनकी रचना होती है उसे मनोवर्गणा कहते हैं।

प्रश्न (२५७)–कार्माणवर्गणा किसे कहते हैं।

उत्तर—जो पुद्गल स्कन्ध कार्माणशरीररूप परिणमे उसे कार्माणवर्गणा कहते हैं।

प्रश्न (२५८)–शरीर कितने हैं ?

तारणु व०, ५–आहारवर्गणा, ६–अग्राह्यवर्गणा, ७–तैजसवर्गणा, ८–अग्राह्यवर्गणा, ६–भाषावर्गणा, १०–अग्राह्यवर्गणा, ११–मनोवर्गणा, १२–अग्राह्यवर्गणा, १३–कार्मणवर्गणा, १४–ध्रुववर्गणा, १५–सांतरनिरन्तरवर्गणा, १६–शून्यवर्गणा, १७–प्रत्येक शरीरवर्गणा, १८–ध्रुवशून्यवर्गणा, १६–बादरनिगोद वर्गणा, ३०–शून्यवर्गणा २१–सूक्ष्मनिगोद वर्गणा, २२–नभोवर्गणा, २३–महास्कंध वर्गणा।

उत्तर—शरीर पाँच हैं—१–औदारिक, २–वैक्रियिक, ३–आहारक, ४–तैजस, और कार्माण ।

प्रश्न (२५९)–औदारिक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर–मनुष्य और तिर्यंचके स्थूल शरीरको औदारिक शरीर कहते हैं ।

प्रश्न (२६०)–वैक्रियिक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो छोटे-बड़े, एक-अनेक आदि भिन्न-भिन्न प्रकारकी क्रियाएँ करें–ऐसे देव और नारकियोंके शरीरको वैक्रियिक शरीर कहते हैं ।

प्रश्न (२६१)–आहारक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर—आहारक ऋद्धिधारी छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनिको किसी-प्रकारकी तत्त्वशंका होनेपर अथवा जिनालय आदिकी वंदना करनेके लिये मस्तकमेंसे एक हाथ प्रमाण स्वच्छ, श्वेत, सप्त धातुरहित पुरुषाकार जो पुतला निकलता है उसे आहारक शरीर कहते हैं।

प्रश्न (२६२)–तैजस शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर—औदारिक, वैक्रियिक और आहारक—इन तीन शरीरोंमें कान्ति उत्पन्न होनेमें जो निमित्त है उसे तैजस शरीर कहते हैं।

प्रश्न (२६३)–कार्माण शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर—ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके समूहको कार्माण शरीर कहते हैं।

प्रश्न (२६४)–एक जीवको एकसाथ कितने शरीरोंका संयोग हो सकता है ?

उत्तर—[१] एकसाथ कमसे कम दो और अधिकसे अधिक चार शरीरोंका संयोग होता है ।

[२] विग्रहगति* में तैजस और कार्माण शरीरका संयोग होता है।

[३] मनुष्य और तिर्यंचको औदारिक, तैजस और कार्माण—तीन शरीर होते हैं; किन्तु आहारक ऋद्धिधारी मुनिको औदारिक, आहारक, तैजस और कार्माण—ऐसे चार शरीर होते हैं।

[४] देव और नारकियोंको वैक्रियिक, तैजस और कार्माण-तीन शरीर होते हैं।

प्रश्न (२६५)–ज्ञानगुणकी कौन-कौनसी पर्यायें हैं ?

उत्तर—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान—यह सम्यक्ज्ञानकी पर्यायें हैं; और कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान तथा कुअवधिज्ञान–यह मिथ्याज्ञानकी पर्यायें हैं।—इसप्रकार ज्ञानगुणकी आठ पर्यायें हैं।

प्रश्न (२६६)–उपरोक्त आठ पर्यायोंमें स्वभावअर्थपर्याय और विभावअर्थपर्याय कौन हैं ?

उत्तर—[१] केवलज्ञान स्वभावअर्थपर्याय है।

[२] सम्यग्मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, और मनःपर्ययज्ञान—यह केवलज्ञानकी अपेक्षासे विभावअर्थपर्यायें हैं और वही चार ज्ञान सम्यक्ज्ञानकी पर्यायें हैं; इसलिये उन्हें एकदेश स्वभावअर्थपर्याय कहा जाता है।

[३] कुमति, कुश्रुत और कुअवधिज्ञान—वे विभावअर्थपर्यायें हैं।

---

* "विग्रहार्थां गतिर्विग्रहगतिः" एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरकी प्राप्तिके लिये गमन करना वह विग्रहगति है। (विग्रह=शरीर)

प्रश्न (२६७)—मतिज्ञानके कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं १—सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष और २—परोक्ष।

प्रश्न (२६८)—सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो इन्द्रिय और मनके निमित्तके सम्बन्धसे पदार्थको एक देश (-भाग) स्पष्ट जाने उसे सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

प्रश्न (२६९)—मतिज्ञानके कितने भेद हैं ?

उत्तर—चार भेद हैं—१—स्मृति, २—प्रत्यभिज्ञान, ३—तर्क और ४—अनुमान।

[१] स्मृति—भूतकालमें जाने, देखे, सुने या अनुभव किये हुए पदार्थका वर्तमानमें स्मरण हो वह स्मृति है।

[२] प्रत्यभिज्ञान—वर्तमानमें किसी पदार्थको देखनेसे—"यह वही पदार्थ है जिसे पहले मैंने देखा था,"—इसप्रकार स्मरण और प्रत्यक्षके जोड़रूप ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं।

[३] तर्क—कोई चिह्न देखकर "यहाँ इस चिह्नवाला अवश्य होना चाहिये"—ऐसा विचार वह तर्क (चिन्ता) है। इस ज्ञानको उह अथवा व्याप्तिज्ञान भी कहते हैं।

[४] अनुमान—सन्मुख चिह्नादि देखकर उस चिह्नवाले पदार्थका निर्णय करना उसे अनुमान (अभिनिबोध) कहते हैं।

प्रश्न (२७०)—मतिज्ञानके क्रमके कितने भेद हैं ?

उत्तर—चार भेद हैं—१-अवग्रह, २-ईहा, ३-अवाय और ४-धारणा।

[१] अवग्रह—इन्द्रिय और पदार्थके योग्य स्थानमें रहनेसे सामान्य प्रतिभासरूप दर्शनके पश्चात् अवान्तर सत्ता सहित विशेष वस्तुके ज्ञानको अवग्रह कहते हैं; जैसे कि—यह मनुष्य है।

[२] ईहा—अवग्रहज्ञान द्वारा जाने हुए पदार्थके विशेषमें उत्पन्न हुए संशयको दूर करनेवाले ऐसे अभिलाषस्वरूप ज्ञान-को ईहा कहते हैं; जैसे कि—वे ठाकुरदासजी हैं।

यह ज्ञान इतना निर्बल है कि किसी भी पदार्थकी ईहा होकर छूट जाये तो कालान्तरमें तत्सम्बन्धी संशय और विस्मरण होजाता है।

[३] अवाय–ईहासे जाने हुए पदार्थमें यह वही है, दूसरा नहीं—ऐसे दृढ ज्ञानको अवाय कहते हैं; जैसे कि—वे ठाकुर-दासजी ही हैं, दूसरा कोई नहीं।

अवायसे जाने हुए पदार्थमें संशय तो नहीं होता किन्तु विस्मरण हो जाता है।

[४] धारणा—जिस ज्ञानसे जाने हुए पदार्थमें कालान्तरमें संशय तथा विस्मरण न हो उसे धारणा कहते हैं।

प्रश्न (२७१)–आत्माके अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाका क्या स्वरूप है?

उत्तर—जीवको अनादिकालसे अपने स्वरूपकी भ्रमणा है, इसलिये प्रथम आत्मज्ञानी पुरुषसे आत्माका स्वरूप सुनकर युक्ति द्वारा आत्मा ज्ञानस्वभावी है—ऐसा निर्णय करना चाहिये.....फिर–परपदार्थकी प्रसिद्धिके कारणरूप जो इन्द्रिय तथा मन द्वारा प्रवर्तित बुद्धि उसे मर्यादामें लाकर अर्थात् परपदार्थोंकी ओरसे अपना लक्ष हटाकर आत्मा जब स्वयं स्वसन्मुख लक्ष करता है तब प्रथम सामान्य स्थूलरूपसे आत्मा सम्बन्धी ज्ञान हुआ। वह अवग्रह पश्चात् विचारके निर्णयकी ओर ढला वह ईहा: "आत्माका स्वरूप ऐसा ही है अन्यथा नहीं"—ऐसा स्पष्ट निर्णय

हुआ वह **अवाय;** और निर्णय किये हुए आत्माके बोधको दृढ़तारूपसे धारण कर रखना सो **धारणा** । यहाँ तक तो परोक्ष ऐसे मतिज्ञानमें धारणा तकका अन्तिम भेद हुआ । फिर—यह आत्मा अनन्त ज्ञानानन्द शांति स्वरूप है ऐसा मतिमेंसे बढ़ता हुआ तार्किक ज्ञान वह श्रुतज्ञान है । भीतर स्वलक्षमें मन–इन्द्रियाँ निमित्त नहीं है । जीव उनसे अंशतः पृथक् हो तब स्वतन्त्र तत्त्वका ज्ञान करके उसमें स्थिर हो सकता है ।

—[देखो मोक्षशास्त्र–अध्याय १, सूत्र १५ की टीका–
प्रकाशक स्वा० मन्दिर]

प्रश्न (२७२)–मतिज्ञानके विषयभूत पदार्थोंके कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—१–व्यक्त, और २–अव्यक्त ।

प्रश्न (२७३)–अवग्रहादिक ज्ञान दोनों प्रकारके पदार्थोंमें हो सकते हैं ?

उत्तर—व्यक्त (-प्रगटरूप) पदार्थमें अवग्रहादिक चारों ज्ञान हैं; परन्तु अव्यक्त (-अप्रगटरूप) पदार्थका मात्र अवग्रह ज्ञान ही होता है ।

प्रश्न (२७४)–अर्थावग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—व्यक्त (प्रगट) पदार्थके अवग्रह ज्ञानको अर्थावग्रह कहते हैं ।

प्रश्न (२७५)–व्यंजनावग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—अव्यक्त (अप्रगट) पदार्थके अवग्रहको व्यंजनावग्रह कहते हैं ।

प्रश्न (२७६)–व्यांजनावग्रह अर्थावग्रहकी भाँति सर्व इन्द्रियों और मन द्वारा होता है या किसी अन्य प्रकारसे ?

उत्तर—व्यंजनावग्रह चक्षु और मनके अतिरिक्त अन्य सर्व इन्द्रियोंसे होता है।

प्रश्न (२७७)–व्यक्त और अव्यक्त पदार्थोंके कितने भेद हैं?

उत्तर—प्रत्येकके बारह-बारह भेद हैं—बहु, एक, बहुविध, एक-विध, क्षिप्र, अक्षिप्र, निःसृत, अनिःसृत, उक्त, अनुक्त, ध्रुव, अध्रुव।

प्रश्न (२७८)–चारित्र गुणकी शुद्ध पर्यायें कौन-कौनसी हैं?

उत्तर—चार हैं—स्वरूपाचरणचारित्र, देशचारित्र, सकलचारित्र और यथाख्यातचारित्र।

प्रश्न (२७९)–स्वरूपाचरणचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर—निश्चय सम्यग्दर्शन होनेपर आत्मानुभवपूर्वक आत्मस्वरूपमें, अनन्तानुबन्धी कषायोंके अभावस्वरूप जो स्थिरता होती है उसे स्वरूपाचरणचारित्र कहते हैं।

प्रश्न (२८०)–देशचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर—निश्चय सम्यग्दर्शन सहित चारित्र गुणकी कुछ विशेष शुद्धि होनेपर (अनन्तानुबन्धी-अप्रत्याख्यानावरणीय कषायोंके अभाव पूर्वक) उत्पन्न आत्माकी शुद्धि विशेषको देशचारित्र कहते हैं।

[इस श्रावकदशामें व्रतादिरूप शुभभाव होते हैं। शुद्ध देश चारित्रसे धर्म होता है और व्यवहार व्रतसे बंध होता है। निश्चय चारित्रके बिना सच्चा व्यवहार चारित्र नहीं हो सकता।]

प्रश्न (२८१)–सकलचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर—निश्चय सम्यग्दर्शन सहित चारित्र गुणकी शुद्धिकी वृद्धि होने पर (अनन्तानुबन्धी आदि तीन कषायोंके अभावपूर्वक) उत्पन्न

(भावलिंगी मुनिपदके योग्य) आत्माकी शुद्धि विशेषको सकलचारित्र कहते हैं ।

मुनिपदमें २८ मूलगुणादिका जो शुभ भाव होता है उसे व्यवहार सकलचारित्र कहते हैं ।

[निश्चयचारित्र आत्माश्रित होनेसे वह मोक्षमार्ग है–धर्म है; और व्यवहारचारित्र पराश्रित होनेसे वास्तवमें बंधमार्ग है–धर्म नहीं है ।]

प्रश्न (२८२)–यथाख्यातचारित्र किसे कहते हैं ।

उत्तर—निश्चय सम्यग्दर्शन सहित चारित्रगुणकी पूर्ण शुद्धता होने पर, कषायोंके सर्वथा अभावपूर्वक उत्पन्न आत्माकी शुद्धि विशेषको यथाख्यातचारित्र कहते हैं ।

प्रश्न (२८३)–निम्नोक्त बोल किस गुणकी कौनसी पर्याय है ?— ध्वनि, प्रतिध्वनि, छाया, प्रतिबिम्ब, सूर्यका विमान, घड़ीके लट्टूका हिलना, दुःख, मोक्ष और केवलज्ञान ।

उत्तर—[१] ध्वनि वह पुद्गल द्रव्यके भाषावर्गणारूप स्कंधमेंसे उत्पन्न हुई ध्वनिरूप पर्याय है । एक पुद्गल-परमाणु ध्वनिरूप परिणमित नहीं होता, इसलिये वह किसी मुख्यगुणकी पर्याय नहीं है; किन्तु स्पर्श गुणके कारण हुए स्कंधकी विशेष प्रकारकी पर्याय है और उस स्कंधका आकार वह विभावव्यंजनपर्याय है ।

[२] प्रतिध्वनि भी उपरोक्तानुसार भाषावर्गणामेंसे उत्पन्न हुई स्कन्धरूप पर्यायें, और उनका आकार वह विभावव्यंजन-पर्याय है ।

[३] छाया और प्रतिबिम्ब पुद्गल द्रव्यके वर्णगुणकी विभावअर्थपर्याय है ।

[४] सूर्य विमान पुद्गल द्रव्यके अनेक स्कन्धोंका अनादि-

अनंत पिंड है। सूर्यमें जो तेज [प्रकाश] है वह वर्ण गुणकी विभावअर्थपर्याय है।

[सूर्यलोकमें वास करनेवाले ज्योतिषी देवोंका नाम भी सूर्य है। देवगति नामकर्मके धारावाही उदयके वशवर्ती स्वभाव-द्वारा वे देव हैं। —प्रवचनसार गाथा ६८ की टीका]

[५] घड़ीके लट्टूका चलना वह पुद्गल द्रव्यकी क्रियावती शक्तिके कारण होनेवाली गमनरूप विभावअर्थपर्याय है।

[६] दुःख वह जीवद्रव्यके सुखगुणकी आकुलतारूप विभाव-अर्थपर्याय है।

[७] मोक्ष वह जीव द्रव्यके समस्त गुणोंको स्वभावअर्थ-पर्याय और प्रदेशत्व गुणकी स्वभावव्यंजनपर्याय है।

[८] केवलज्ञान वह जीव द्रव्यके ज्ञान गुणकी परिपूर्ण स्वभावअर्थपर्याय है।

प्रश्न (२८४)—अनादि-अनंत, सादिअनंत, अनादिसांत और सादि-सांत—इन्हें उदाहरण देकर समझाइये।

उत्तर—[१] अनादिअनंत—जिसका आदि और अंत न हो उसे अनादिअनंत कहते है। द्रव्य और गुण अनादिअनंत हैं; अभव्य जीवकी संसारी पर्याय भी अनादिअनंत है।

[२] सादिअनंत—क्षायिक सम्यक्त्व, केवलज्ञानादि क्षायिक-भाव तथा मोक्षपर्याय नये प्रगट होते है उस अपेक्षासे वे सादि (आदि सहित) और वे पर्यायें बदलने पर भी ज्योंके त्यों अनंतकाल होते ही रहते हैं, इसलिये उन्हें अनंत कहा है।

[३] अनादिसांत—संसारपर्याय अनादिकालीन है; किन्तु जिस भव्य जीवके संसारदशारूप अशुद्धपर्यायका अंत आ जाता है, उसे वह अनादिसांत है।

[४] सादिसांत—सम्यग्दृष्टिको मोक्षमार्ग सम्बन्धी क्षयोपशम तथा उपशमभाव नये-नये होते हैं; इसलिये वे सादि, और उनका अन्त आता है इसलिये सांत हैं।

प्रश्न (२८५)–सायंकालके बादलोंमें क्या बदलता दिखाई देता है ?

उत्तर—उनमें वर्ण बदलता है; वह पुद्गल द्रव्यके वर्णगुणकी विभावअर्थपर्याय है, और जो आकार बदलता है वह उनके प्रदेशत्व गुणकी विभावव्यंजनपर्याय है ।

प्रश्न (२८६)–महावीर स्वामी और भगवान ऋषभदेव–दोनोंकी व्यंजन और अर्थपर्यायकी तुलना करो ।

उत्तर—दोनोंके आकारमें—ऊँचाई आदिमें अन्तर होनेसे उनकी व्यंजनपर्यायमें अन्तर है; लेकिन प्रदेशत्व गुणके अतिरिक्त शेष गुणोंकी पर्यायें समान होनेसे उनकी अर्थपर्यायें समान हैं।

प्रश्न (२८७)–दो परमाणु द्रव्योंकी व्यंजन और अर्थपर्यायकी तुलना करो, तथा जीवकी सिद्धपर्यायके साथ उनकी तुलना करो ।

उत्तर—[१] दो पृथक् परमाणु पृथक् रहते हैं तबतक उनकी स्वभावव्यन्जनपर्यायें समान होती हैं ।

स्वभावअर्थपर्यायें शुद्ध होनेपर भी उनके स्पर्शादि गुणोंके परिणमनमें परस्पर अन्तर होता है ।

परमाणुका बन्धस्वभाव होनेसे उसमें पुनः स्कन्ध होनेकी योग्यता है; इसलिये अपने स्पर्श गुणके कारण वे बंधदशाको प्राप्त करते हैं ।

[२] दो सिद्धात्माओंकी परस्पर स्वभावव्यंजन पर्यायें एक-सी नहीं होती; किन्तु दो पृथक् परमाणुओंकी व्यंजनपर्यायें एक-सी होती हैं ।

जीवका मोक्षस्वभाव होनेसे—दो सिद्धात्माओंकी स्वभाव-अर्थपर्यायें सदैव एकसमान शुद्ध परिणमित होती हैं; किन्तु दो पृथक् पुद्गल परमाणुओंमें ऐसा नहीं होता।

सिद्धभगवान शुद्ध हुए सो हुए, फिर कभी भी बंधदशाको प्राप्त नहीं होते, किन्तु पुद्गलपरमाणु पुनःपुनः बंधदशाको प्राप्त होते हैं।

प्रश्न (२८८)—क्या आम्रफलकी व्यंजनपर्याय उसके ऊपरी भागमें होती है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि वह अनन्त परमाणुओंका पिंड है और उसके सम्पूर्ण भागमें उन-उन परमाणुओंकी व्यंजनपर्यायें हैं। प्रत्येक परमाणुद्रव्यकी व्यंजनपर्याय भी भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र है।)

प्रश्न (२८९)—जिसके स्वभावव्यंजन पर्याय हो उसके विभावअर्थ-पर्याय होती है ? होती हो तो कारण बतलाइये।

उत्तर—नहीं, क्योंकि जीवद्रव्यमें मोक्षदशा हुए बिना स्वभावव्यंजन पर्याय प्रगट नहीं होती, इसलिये जिसके स्वभावव्यंजनपर्याय हो उसके विभाव अर्थपर्याय नहीं हो सकती।

पुद्गलद्रव्यमें भी स्वभावव्यंजनपर्याय हो उसकाल विभाव-अर्थपर्याय (स्कन्धरूपपर्याय) नहीं होती।

प्रश्न (२९०)—चार प्रकारकी पर्यायोंमेंसे तीन प्रकारकी पर्यायें किसके होती हैं ?

उत्तर—संसारी सम्यग्दृष्टि जीवके तीन प्रकारकी पर्यायें होती हैं; क्योंकि—

[१] क्षायिक सम्यक्त्वरूप स्वभाव अर्थ पर्याय किसीको चौथे गुणस्थानसे होती है; और बारहवें गुणस्थानसे चारित्रगुण-

की स्वभाव अर्थपर्याय होती है; तेरहवें गुणस्थानसे ज्ञानादिकी पूर्ण शुद्ध अर्थ पर्यायें होती हैं।

[२] योगगुणकी स्वभावअर्थपर्याय तेरहवें गुणस्थानके अंत-में प्रगट होती है।

[३] १४ वें गुणस्थान तक प्रदेशत्व गुणकी विभावव्यंजन-पर्याय होती है, और—

[४] शेष जिन-जिन गुणोंका अशुद्ध परिणमन है उनकी विभाव अर्थपर्यायें १४ वें गुणस्थान तक होती हैं।

[—आत्मावलोकन, पृष्ठ १००–१०१]

प्रश्न (२९१)—अरिहन्त भगवानके विभावव्यंजनपर्याय होती है?

उत्तर—हाँ, क्योंकि उनके भी प्रदेशत्वगुणका अशुद्ध परिणमन है, और वह १४ वें गुणस्थानके अंत तक होता है।

प्रश्न (२९२)—अरिहंतभगवान, सिद्धभगवान और अव्रती सम्यग्दृष्टि—इन तीनोंका सम्यग्दर्शन समान है या कुछ अन्तर होता है?

उत्तर—समान है। "जिसप्रकार छद्मस्थको श्रुतज्ञान अनुसार प्रतीति होती है उसीप्रकार केवली और सिद्ध भगवानको केवलज्ञान अनुसार ही प्रतीति होती है। जिन सात तत्त्वोंका स्वरूप पहले निर्णीत किया था, वही अब केवलज्ञान द्वारा जाना इसलिये वहाँ प्रतीतिमें परम अवगाढ़ता हुई, इसीलिये वहाँ परमावगाढ़ सम्यक्त्व कहा है; किन्तु पूर्वकालमें श्रद्धान किया था उसे यदि असत्य माना होता तो वहाँ अप्रतीति होती; किन्तु जैसा सात तत्त्वोंका श्रद्धान छद्मस्थको हुआ था वैसा ही केवली—सिद्ध भगवानको भी होता है; इसलिये ज्ञानादिककी हीनता—अधि-कता होनेपर भी तिर्यंचादिक और केवली सिद्धभगवानको

सम्यक्त्वगुण तो समान ही कहा है।"

[मोक्षमार्ग प्रकाशक–अधिकार ९ वाँ पृष्ठ ४७५]

प्रश्न (२९३)–भगवानकी दिव्यध्वनि क्या है ?

उत्तर—दिव्यध्वनि पुद्गलद्रव्यकी पर्याय है। तेरहवें गुणस्थानवर्ती श्रीअरिहन्तदेवकी जो उपदेशात्मक भाषा निकलती है उसे दिव्यध्वनि कहते हैं। भगवानका आत्मद्रव्य अखण्ड वीतराग-भावरूप व अखण्ड केवलज्ञानरूप परिणमित होगया है, इसलिये योगके निमित्तसे जो दिव्यध्वनि खिरती है वह भी अखण्ड अर्थात् निरक्षर (अनक्षर) स्वरूप होती है।

भगवानकी दिव्यध्वनि देव, मनुष्य, तिर्यंच–सभी जीव अपनी अपनी भाषामें अपने ज्ञानकी योग्यतानुसार समझते हैं। उस निरक्षर ध्वनिको ॐकारध्वनि भी कहते हैं **जबतक वह ध्वनि श्रोताओंके कर्ण प्रदेश तक न पहुंचे तबतक वह अनक्षर ही है, और** जब वह श्रोताओंके कर्णोंमें प्राप्त हो जाती है तब अक्षररूप होती है।

[-देखो, गोम्मटसार जीवकांड गाथा २२७ की टीका]

भगवानकी दिव्यध्वनि सम्बन्धी विशेष आधारोंके लिये देखिये :—

१—जिनकी धुनि है ॐकाररूप, निरक्षरमय महिमा अनूप।

(पं० द्यानतरायकृत जयमाला)

२—सर्वार्थसिद्धि टीका (अध्याय ५, सूत्र २४ की टीका)

३—तत्त्वार्थ राजवार्तिक टीका „ „ „

४—श्लोकवार्तिक टीका „ „ „

५—अर्थ प्रकाशिका [अध्याय ५, सूत्र २४ की टीका]

६—तत्त्वार्थसूत्र पाँचवाँ अध्याय [अंग्रेजी टीका] इन्दौरसे प्रकाशित।

७—तत्त्वार्थसार, अजीव अधिकार सूत्र ६३ पृष्ठ २५६।

८—नियमसार गाथा १०८ की टीका।

९—चर्चा समाधान पृष्ठ २६–२७।

१०—बृहद् द्रव्यसंग्रह गाथा १६ की टीका।

११—समवशरण पाठ ब्रह्म० भगवानसागरजी कृत पृष्ठ १७४

१२—पंचास्तिकाय पृष्ठ ४ तथा १५३ (जयसेनाचार्यकी टीका)

१३—बनारसी विलास—ज्ञान बावनी।

१४—विद्वज्जन बोधक भाग १, (पृष्ठ १५६ से १५९ तथा उसमें लिखित आधार)

१५—विहारीदासजी कृत जिनेन्द्र स्तुति :—

"इच्छा बिना भविभाग्य तैं, तुम ध्वनि सु होय निरक्षरी।"

१६—"एकरूप निरक्षर उपजत, उचरत नेक प्रसंग।"

[-प्राचीन कवि]

प्रश्न (२९४)—सर्वज्ञ भगवानके केवलज्ञानका क्या विषय है ?

प्रश्न—१—सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य। (मोक्षशास्त्र अ. १, सूत्र २९)

अर्थ—केवलज्ञानका विषय सर्व द्रव्य [गुणों सहित] और उनकी सर्व पर्यायें हैं—अर्थात् केवलज्ञान एक साथ सर्व पदार्थोंको और उनके सर्व गुणों तथा पर्यायोंको जानता है।

२—श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत प्रवचनसार गाथा ३७ में कहा है:—

तक्कालिगेव सव्वे सदसब्भूदा हि पज्जया तासिं।

वट्टंते ते णाणे विसेसदो दव्वजादीणं ॥३७॥

अर्थ—उन (जीवादि) द्रव्य जातियोंकी समस्त विद्यमान और अविद्यमान पर्यायें तात्कालिक (वर्तमान) पर्यायोंकी भाँति विशिष्टता पूर्वक (अपने-अपने भिन्न-भिन्न स्वरूपसे) ज्ञानमें वर्तती हैं ।"

इस श्लोकको श्री अमृतचन्द्राचार्यकृत संस्कृत टीकामें कहा है कि :—

"(जीवादि) समस्त द्रव्य जातियोंकी पर्यायोंकी उत्पत्तिकी मर्यादा तीनों कालकी मर्यादा जितनी होनेसे (अर्थात् वे तीनों काल में उत्पन्न हुआ करती हैं इसलिये), उनकी (उन समस्त द्रव्य जातियोंकी), क्रमपूर्वक तपती हुई स्वरूप सम्पदावान, (एकके बाद एक प्रगट होनेवाली), विद्यमानपने और अविद्यमानपनेको प्राप्त होनेवाली (भूतकाल तथा भविष्यकालकी) जो जितनी पर्यायें हैं, वे सभी तात्कालिक (वर्तमान कालीन) पर्यायों की भाँति, अत्यन्त मिश्रित होनेपर भी, सर्व पर्यायोंके विशिष्ट लक्षण स्पष्ट ज्ञात हो इसप्रकार, एक क्षणमें ही ज्ञान महल-में स्थिति को प्राप्त होती हैं ।

इस गाथाकी संस्कृत टीकामें श्री जयसेनाचार्यने कहा है कि—

"......ज्ञानमें सर्व द्रव्योंकी तीनों कालकी पर्यायें एक साथ ज्ञात होनेपर भी प्रत्येक पर्यायका विशिष्ट स्वरूप, प्रदेश, काल, आकारादि विशेषतायें स्पष्ट ज्ञात होती हैं; संकर—व्यतिकर नहीं होते.."

३—"उनको (केवली भगवानको) **समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका अक्रमिक ग्रहण होनेसे** समक्ष संवेदनकी (प्रत्यक्ष ज्ञानकी आलम्बनभूत समस्त द्रव्य–पर्यायें प्रत्यक्ष ही हैं।"

(श्री प्रवचनसार गाथा २१ की टीका)

४—जो (पर्यायें) अद्यापि उत्पन्न नहीं हुई हैं, तथा जो उत्पन्न होकर विलयको प्राप्त होगई हैं, वे (पर्यायें) वास्तवमें अविद्यमान होने पर भी **ज्ञानके प्रति नियत होनेसे** (ज्ञानमें निश्चित् स्थिर-चिपके होनेसे, ज्ञानमें सीधे ज्ञात होनेसे) ज्ञान प्रत्यक्ष वर्तते हुए, पत्थरके स्तम्भमें अंकित भूत और भविष्यकालीन देवोंकी (तीर्थंकर देवोंकी) भाँति अपना स्वरूप अकंपरूपसे (ज्ञानको) अर्पित करती हुई (वे पर्यायें) विद्यमान ही हैं।"

(—श्री प्रवचनसार गाथा ३८ की टीका)

५—"क्षायिक ज्ञान वास्तवमें (सचमुच) एक ही समयमें सर्वत: (सर्व आत्मप्रदेशोंसे), तत्काल वर्तते हुए अथवा अतीत, अनागत कालमें वर्तते हुए उन समस्त पदार्थोंको जानता है कि जिनमें पृथक्‌रूप वर्तते हुए स्वलक्षणोंरूप लक्ष्मी (द्रव्योंके भिन्न–भिन्न प्रवर्तमान ऐसे निज–निज लक्षण वह द्रव्योंकी लक्ष्मी) से आलोकित अनेक प्रकारोंके कारण वैचित्र्य प्रगट हुआ है......उन्हें जानता है। क्षायिकज्ञान अवश्यमेव **सर्वदा सर्वत्र सर्वथा** सर्वको (द्रव्य–क्षेत्र–काल–भावरूपसे जानता है।)

(—श्री प्रवचनसार गाथा ४७ की टीका)

६—'जो एक ही साथ (–युगपत्) **त्रैकालिक त्रिभुवनस्थ** (तीनों काल और तीनों लोकके) पदार्थोंको नहीं जानता उसे

पर्याय सहित एक द्रव्य भी जानना शक्य नहीं है।"

[श्रीप्रवचनसार गाथा ४८]

७—"....एक ज्ञायकभावका सर्व ज्ञेयोंको जाननेका स्वभाव होनेसे, **क्रमशः प्रवर्तित अनंत भूत-वर्तमान-भावी विचित्र पर्याय समूहवाले**, अगाध स्वभाव और गम्भीर ऐसे समस्त द्रव्यमात्रको— मानों कि—वे द्रव्य ज्ञायकमें अंकित होगये हों, चित्रित होगये हों, दब गये हों, गड़ गये हों, डूब गये हों, समा गये हों, प्रतिबिम्बित हुए हों इसप्रकार—**एक क्षणमें** ही जो (शुद्ध आत्मा) **प्रत्यक्ष करता है......**"

[श्री प्रवचनसार गाथा २०० की टीका]

८—"घातिकर्मका नाश होने पर अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य—यह अनन्त चतुष्टय प्रगट होते हैं। वहाँ अनन्तदर्शन-ज्ञानसे तो, छह द्रव्योंसे भरपूर जो यह लोक है उसमें जीव अनन्तानन्त और पुद्गल उनसे भी अनन्तानन्तगुने हैं; और धर्म, अधर्म तथा आकाश यह तीन द्रव्य एक एक हैं और असंख्य कालद्रव्य हैं—उन सर्व द्रव्योंकी भूत-भविष्य-वर्तमानकाल संबंधी अनन्त पर्यायोंको भिन्न-भिन्न एकसमयमें देखते और जानते हैं।

[अष्टपाहुड़-भावपाहुड़ गाथा १५० की पं० जयचन्द्रजी कृत टीका]

९—श्री पंचास्तिकायकी श्री जयसेनाचार्यकृत संस्कृत टीका, पृष्ठ ८७, गाथा ५ में कहा है कि—

.....णाणाणाणं च णत्थि केवलिणो—गाथा ५।

केवलीभगवानको ज्ञानाज्ञान नहीं होता, अर्थात् उन्हें किसी विषयमें ज्ञान और किसीमें अज्ञान वर्तता है-ऐसा नहीं होता, **किन्तु सर्वत्र ज्ञान ही वर्तता है।**

१०—"केवलीभगवान त्रिकालावच्छिन्न लोक-अलोक संबंधी सम्पूर्ण गुण–पर्यायोंसे समन्वित अनन्त द्रव्योंको जानते हैं। ऐसा **कोई ज्ञेय नहीं हो सकता जो केवलीभगवानके ज्ञानका विषय न हो.....**जब मति और श्रुतज्ञान द्वारा भी यह जीव वर्तमानके उपरान्त भूत तथा भविष्यत् कालकी बातोंका परिज्ञान करता है, तो केवलीभगवान अतीत (भूतकालके), अनागत (भविष्यकालके), और वर्तमानकालके समस्त पदार्थोंका ग्रहण करें वह युक्तियुक्त ही है।.......**यदि केवलीभगवान अनन्तानन्त पदार्थोंको क्रम-पूर्वक जानते तो सम्पूर्ण पदार्थोंका साक्षात्कार नहीं होता।** अनन्तकाल व्यतीत होनेपर भी पदार्थोंकी अनन्त गणना अनन्त ही रहती है। आत्माकी असाधारण निर्मलता होनेके कारण एकसमय-में ही सकल पदार्थोंका ग्रहण (ज्ञान) होता है।

"जब ज्ञान एकसमयमें सम्पूर्ण जगत या विश्वके तत्त्वोंका बोध (ज्ञान) कर चुकेगा तब वह कार्यहीन हो जायेगा" ऐसी आशंका भी युक्त नहीं है; क्योंकि कालद्रव्यके निमित्तसे तथा अगुरुलघु गुणके कारण समस्त वस्तुओंमें प्रतिक्षण परिणमन–परिवर्तन होता है। जो कल भविष्यत् था वह आज वर्तमान बनकर फिर अतीतका रूप धारण करता है इसप्रकार परिवर्तनका चक्र सदैव चलते रहनेके कारण ज्ञेयके परिणमन अनुसार ज्ञानमें भी परिणमन होता है। **जगतके जितने पदार्थ हैं उतनी ही केवलज्ञानकी शक्ति या मर्यादा नहीं है। केवलज्ञान अनन्त है। यदि लोक अनंतगुना भी होता तो वह केवलज्ञान सिन्धुमें बिन्दु तुल्य समा जाता.....** अनंत केवलज्ञान द्वारा अनंत जीव तथा अनन्त आकाशादिका ग्रहण

होने पर भी वे पदार्थ सांत नहीं होते। अनन्तज्ञान अनंत पदार्थ या पदार्थोंको अनंतरूपसे बतलाना है; इस कारण ज्ञेय और ज्ञानकी अनन्तता अबाधित रहती है।"

[महाबंध—महाधवला सिद्धान्त शास्त्र, प्रथम भाग प्रकृति-बन्धाधिकार पृष्ठ २७, हिन्दी अनुवाद परसे। धवला पुस्तक १३, पृष्ठ ३४६ से ३५३]

उपरोक्त आधारोंसे निम्नोक्त मंतव्य मिथ्या सिद्ध होते हैं:—

[१] केवली भगवान भूत और वर्तमान कालवर्ती पर्यायोंको ही जानते हैं और भविष्यत् पर्यायोंको वे हों तब जानते हैं।

[२] सर्वज्ञ भगवान अपेक्षित धर्मोंको नहीं जानते।

[३] केवलीभगवान भूत-भविष्यत् पर्यायोंको सामान्यरूपसे जानते हैं किन्तु विशेषरूपसे नहीं जानते।

[४] केवली भगवान भविष्यत् पर्यायोको समग्ररूपसे जानते हैं, भिन्न-भिन्नरूपसे नहीं जानते।

[५] ज्ञान सिर्फ ज्ञानको ही जानता है।

[६] सर्वज्ञके ज्ञानमें पदार्थ झलकते हैं, किन्तु भूतकाल तथा भविष्यतकालकी पर्यायें स्पष्टरूपसे नहीं झलकतीं।—इत्यादि मन्तव्य सर्वज्ञको अल्पज्ञ मानने समान हैं।

प्रश्न (२९५)—शब्द क्या है? क्या वह आकाशका गुण है?

उत्तर—शब्द पुद्गल द्रव्यकी स्कन्धरूप पर्याय है, वह आकाशका गुण नहीं है, क्योंकि आकाश तो सदैव अमूर्तिक है, और शब्द मूर्तिक है, वह कानोंसे टकराता है; उसकी आवाजरूप—ध्वनिरूप गर्जना होती है।—इसप्रकार शब्द इन्द्रिय द्वारा ज्ञात होता है इसलिये वह पुद्गल है।

जगतमें भाषावर्गणा नामके पुद्गलोंकी जाति भरी पड़ी है; वे अपने कालमें, अपने कारण स्वयं शब्दरूप परिणमित होते हैं। जिससमय वे पुद्गल शब्दरूप परिणमित होते हैं, उससमय कोई न कोई जीव या अन्य पदार्थ निमित्त होता है, किन्तु वास्तवमें भाषावर्गणा जीवके कारण परिणमित नही होती। जब भाषावर्गणा शब्दरूप परिणमित होती है उससमय जीवकी इच्छा अथवा योग हो तो वह निमित्तमात्र है।

प्रश्न (२९६)—शब्दको आकाशका गुण माना जाये तो क्या दोष आयेगा ?

उत्तर—शब्द मूर्तिक पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है और आकाश अमूर्तिक द्रव्य है, इसलिये वह अमूर्त द्रव्यका गुण नहीं है; क्योंकि:—

"....गुण-गुणीको अभिन्न प्रदेशपना होनेके कारण वे (गुण-गुणी) एक वेदन द्वारा वेद्य होनेसे अमूर्त द्रव्यको भी श्रवणेन्द्रियके विषयभूतपना आजायेगा।"

(—प्रवचनसार गाथा १३२ की टीका)

"नैयायिक शब्दको आकाशका गुण मानते हैं, किन्तु वह मान्यता अप्रमाण है। गुण-गुणीके प्रदेश अभिन्न होते हैं, इसलिये जिस इन्द्रियसे गुण ज्ञात हो उसी इन्द्रियसे गुणी भी ज्ञात होना चाहिये। शब्द कर्णेन्द्रियसे ज्ञात होते हैं, इसलिये आकाश भी कर्णेन्द्रिय द्वारा ज्ञात होना चाहिये; लेकिन आकाश तो किसी इन्द्रिय द्वारा ज्ञात नहीं होता, इसलिये शब्द आकाशादि अमूर्तिक द्रव्योंका गुण नहीं है।"

(श्री प्रवचनसार गाथा १३२का फुटनोट)

प्रश्न (२६७)–जीभ द्वारा शब्द (वाणी) बोले जाते हैं ? क्या वे जीवकी इच्छासे बोले जाते हैं ?

उत्तर—[१] नहीं; क्योंकि जीभ आहार वर्गणामेंसे बनती है और शब्द (वाणी) की रचना भाषावर्गणामेंसे होती है। आहार वर्गणा और भाषावर्गणाके बीच अन्योन्याभाव है; इसलिये जीभ द्वारा वाणी नहीं बोली जाती ।

[२] नहीं; क्योंकि जीभ और वाणीके बीच अत्यन्ताभाव है। इच्छाके बिना भी केवलज्ञानीकी वाणी खिरती है; सशक्त मनुष्य जिस समय बोलनेकी इच्छा करे उसी समय कभी-कभी भाषा नहीं बोल सकता, जिसे लकवा हो अथवा जो तोतला हो वह मनुष्य व्यवस्थितरूपसे बोलनेकी बहुत इच्छा करता है फिर भी व्यवस्थित भाषा नहीं निकलती । जब पुद्गलकी भाषारूप परिणमित होनेकी योग्यता हो तभी भाषा निकलती है और तभी इच्छादि निमित्तभूत होते हैं ।

प्रश्न (२६८)–तीर्थंकर भगवानको इच्छा नहीं है, फिर भी योगके कारण वाणी खिरती है वह सच है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि वहाँ भी पुद्गलकी शक्तिकी योग्यतासे वाणी-रूप पर्याय उसके अपने कालमें ही होती है। वाणी हो तब योग तो निमित्तमात्र है ।

जीवके योग गुणकी पर्याय और पुद्गलकी शक्तिमें अत्यन्त अभाव है। यदि योगसे वाणी होती हो तो तेरहवें गुणस्थानमें उनके निरन्तर योग गुणका कम्पन है, इसलिये निरन्तर वाणी होना चाहिये, किन्तु ऐसा तो होता नहीं है ।

और मूककेवली योगसहित हैं; तथापि उनके वाणी नहीं होती; इसलिये वाणी जीवके योगके आधीन नहीं है तथा इच्छाके भी आधीन नहीं है; परन्तु वह स्वतन्त्ररूपसे उसके अपने कालमें, अपने कारण अपनी योग्यतानुसार परिणमित होती है।

प्रश्न (२९९)–कर्म बंधके कारण कौनसे हैं ?

उत्तर—मिथ्यादर्शनाऽविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः।

(मोक्षशास्त्र अ० ८, सूत्र १)

अर्थ—मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग—यह पाँच कर्मबंधके कारण हैं।

प्रश्न (३००)–मिथ्यादर्शन (मिथ्यात्व) किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वोंके विपरीत श्रद्धानको तथा अदेव (कुदेव)को देव मानना, अतत्त्वको तत्त्व मानना, अधर्म (कुधर्म)को धर्म मानना, इत्यादि विपरीत श्रद्धानको मिथ्यात्व कहते हैं। (वह श्रद्धा गुणकी विपरीत पर्याय है।)

प्रश्न (३०१)–मिथ्यादर्शनके कितने प्रकार हैं ?

उत्तर–दो प्रकार हैं–१–अगृहीत मिथ्यात्व और २–गृहीत मिथ्यात्व।

१—अगृहीत मिथ्यात्व—

जीव परद्रव्यका कुछ कर सकता है या शुभविकल्पसे आत्माको लाभ होता है—ऐसी अनादिकालीन मान्यता मिथ्यात्व है, और वह किसीके सिखानेसे नहीं हुआ है इसलिये अगृहीत है।

२—गृहीत मिथ्यात्व—

जन्म होनेके पश्चात् परोपदेशके निमित्तसे जीव जो अतत्त्व श्रद्धा ग्रहण करता है उसे गृहीतमिथ्यात्व कहते हैं। [अगृहीत

मिथ्यात्वको निसर्गज मिथ्यात्व और गृहीत मिथ्यात्वको बाह्य प्राप्त मिथ्यात्व भी कहते हैं। जिसे गृहीत मिथ्यात्व हो उसे अगृहीत मिथ्यात्व तो होगा ही।

प्रश्न (३०२)–गृहीत मिथ्यात्वके कितने भेद हैं?

उत्तर–पाँच भेद हैं–१–एकान्त मिथ्यात्व, २–विपरीत मिथ्यात्व, ३–संशय मिथ्यात्व, ४–अज्ञान मिथ्यात्व और ५–विनय मिथ्यात्व।

१–एकान्त मिथ्यात्व

आत्मा परमाणु आदि पदार्थोंका स्वरूप अनेकान्तमय (अनेक धर्मोंवाला) होनेपर भी उन्हें सर्वदा एक ही धर्म-वाला मानना वह एकान्त मिथ्यात्व है; जैसे कि–आत्माको सर्वथा क्षणिक अथवा सर्वथा नित्य ही मानना; गुण–गुणीका सर्वथा भेद या अभेद मानना आदि।

२–विपरीत मिथ्यात्व

आत्माके स्वरूपको अन्यथा माननेकी रुचिको विपरीत मिथ्यात्व कहते है; जैसे कि–

१-शरीरको आत्मा मानना;

२–वस्त्र–पात्रादि सहितको (सग्रंथको) निर्ग्रंथ गुरु मानना।

३–स्त्रीका शरीर होनेपर भी उसे मुनिदशा और मोक्ष मानना।

४–केवलीभगवानको ग्रासाहार (कवलाहार), रोग, उपसर्ग, वस्त्र पात्र, पाटादि सहित तथा क्रमिक उपयोग मानना।

५–पुण्यसे अर्थात् शुभरागसे तथा निमित्तसे धर्म मानना आदि।

३–संशय मिथ्यात्व

"धर्मका स्वरूप ऐसा है अथवा वैसा है?" इसप्रकार परस्पर

विरुद्ध दोनोंरूप श्रद्धानको संशय मिथ्यात्व कहते हैं; जैसे कि—आत्मा अपने कार्यका कर्ता होता होगा या परवस्तुके कार्यका कर्ता होता होगा ? निमित्त और व्यवहारके अवलम्बनसे धर्म होगा या अपने शुद्धात्माके आलम्बनसे ?—इत्यादि प्रकारका संशय रहना।

४—अज्ञान-मिथ्यात्व

जहाँ हित-अहितका कोई विवेक न हो, अथवा किसी प्रकारकी परीक्षा किये बिना धर्मकी श्रद्धा करना वह अज्ञान मिथ्यात्व है; जैसे कि—पशु-वध या पापमें धर्म मानना।

विनय-मिथ्यात्व—

समस्त देवों और समस्त धर्ममतोंको समान मानना वह विनय मिथ्यात्व है।

[सर्व प्रकारके बंधका मूल कारण मिथ्यात्व है। सर्वप्रथम वह दूर हुए बिना अविरति आदि बंधके कारण भी दूर नहीं होते, इसलिये सर्वप्रथम मिथ्यात्व (गृहीत और अगृहीत) को दूर करना चाहिये।]

प्रश्न (३०३)—अविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर—१—(चारित्रके विषयमें) निर्विकार स्वसंवेदनसे विपरीत अव्रत परिणामरूप विकारको अविरति कहते हैं।

२—षट्कायके जीवोंको (पाँच स्थावर जीव और एक त्रस जीवकी) हिंसाके त्यागरूप भाव न करना तथा पाँच इन्द्रियाँ और मनके विषयोंमें प्रवृत्ति करना—ऐसे बारह प्रकारकी अविरति है।

प्रश्न (४०४)—प्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरणीय और प्रत्याख्यानावरणीय (क्रोध, मान, माया, लोभ) के उदयमें युक्त होनेसे तथा संज्वलन और नो कषायके तीव्र उदयमें युक्त होनेसे निरतिचार चारित्रके पालनमें निरुत्साह तथा स्वरूपकी असावधानीको प्रमाद कहते हैं। छठवें गुणस्थानमें संज्वलन और नो कषायके तीव्र उदयमें युक्त होनेरूप प्रमाद होता है।

प्रश्न (३०५)–प्रमादके कितने भेद हैं ?

उत्तर—पन्द्रह भेद हैं—४ विकथा (स्त्रीकथा, राष्ट्रकथा, भोजनकथा और राजकथा), ४ कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), ५ इन्द्रियोंके विषय. १ निद्रा और १ प्रणय (-स्नेह)।

प्रश्न (३०६)–कषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर—मिथ्यात्व तथा क्रोध, मान, माया लोभरूप आत्माकी अशुद्ध परिणतिको कषाय कहते हैं।

कषायके २५ प्रकार हैं—४ अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ, ४ अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोधादि, ४ प्रत्याख्यानावरणीय क्रोधादि, संज्वलन क्रोधादि इसप्रकार १६ कषाय और ६ नोकषाय—[हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, और नपुंसकवेदरूप आत्माकी अशुद्ध परिणतिको नो कषाय कहते हैं]

[प्रमाद और कषायमें सामान्य विशेषका अन्तर है। सातवेंसे १० वें गुणस्थान तक उस उस स्थानयोग्य कषाय है।]

प्रश्न (३०७)–योग किसे कहते हैं ?

उत्तर—मन, वचन, कायके आलम्बनसे आत्माके प्रदेशोंका परिस्पंदन होना—उसे योग कहते हैं ?

[योग गुणकी अशुद्ध पर्यायमें कम्पनपनेको द्रव्ययोग, और कर्म–नोकर्मके ग्रहणमें निमित्तरूप योग्यताको भावयोग कहते हैं।]

योगके पन्द्रह भेद हैं—

४ मनोयोग (सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग और अनुभय मनोयोग), ७ काययोग (औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और कार्माण), ४ वचनयोग (सत्य वचनयोग, असत्य वचनयोग, उभय वचनयोग और अनुभय वचनयोग)

चतुष्टय

प्रश्न (३०८)–स्वचतुष्टय और परचतुष्टयका क्या अर्थ ?

उत्तर—स्वचतुष्टय अर्थात् अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव; परचतुष्टय अर्थात् अपनेसे भिन्न ऐसे पर पदार्थोंके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव।

प्रश्न (३०९)–आत्माके स्वचतुष्टय समझाइये।

उत्तर—[१] स्वद्रव्य—अपने ज्ञानादि गुणों और पर्यायोंसे अभिन्न वह स्वद्रव्य।

[२] स्वक्षेत्र—लोकप्रमाण अपने असंख्य प्रदेश हैं वह आत्माका स्वक्षेत्र।

[३] स्वकाल—नित्य स्वभावको छोड़े बिना निरन्तर क्रमबद्ध अपने-अपने अवसरमें नई-नई पर्यायोंका जो उत्पाद होता रहता है उस निज परिणामका नाम स्वकाल।

[४] स्वभाव—द्रव्यके आश्रयमें रहनेवाले त्रिकाली शक्तिरूप जो अनन्तगुण हैं वह स्वभाव।

प्रश्न (३१०)–पुद्गल परमाणुके स्वचतुष्टय समझाओ।

उत्तर—[१] द्रव्य—अपने स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, अस्तित्व आदि अनन्त गुणों तथा अपनी सर्व पर्यायोंरूप अखण्ड वस्तु–वह पुद्गलका स्वद्रव्य है।

[२] क्षेत्र—पुद्गल परमाणुका एक प्रदेश वह उसका स्वक्षेत्र है।

[३] काल–नित्य स्वभावको न छोड़कर निरन्तर क्रमबद्ध अपने-अपने अवसरमें नई-नई पर्यायोंका जो उत्पाद होता रहता है—उस पुद्गलके निज परिणामका नाम स्वकाल है।

[४] भाव–पुद्गल द्रव्यके आश्रयमें रहनेवाले जो स्पर्शादि अनन्त गुण हैं वह उसका स्वभाव है।

प्रश्न (३११)–क्षेत्रकी अपेक्षासे द्रव्य–गुण–पर्यायकी तुलना करो।

उत्तर—तीनोंका क्षेत्र समान अर्थात् एक है।

प्रश्न (३१२)–कालकी अपेक्षासे द्रव्य–गुण–पर्यायकी तुलना करो।

उत्तर—द्रव्य और गुण त्रिकाल तथा पर्याय एकसमय पर्यंतकी।

प्रश्न (३१३)–द्रव्य और पर्यायमें भेद–अभेद समझाओ।

उत्तर—संख्यासे द्रव्य एक और उसकी पर्यायें अनन्त; कालसे द्रव्य त्रिकाल और पर्याय एकसमयकी; भावसे भेद; क्योंकि द्रव्य और पर्यायका स्वरूप भिन्न–भिन्न है। क्षेत्र दोनोंका समान अर्थात् एक है।

प्रकरण चौथा

"अभाव" अधिकार

प्रश्न (३१४)–अभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें अस्तित्व न होनेको अभाव कहते हैं।

प्रश्न (३१५)–अभावके कितने भेद हैं ?

उत्तर—चार भेद हैं—१–प्रागभाव, २–प्रध्वंसाभाव, ३–अन्योन्याभाव, ४–अत्यंताभाव।

प्रश्न (३१६)–प्रागभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—वर्तमान पर्यायका पूर्व पर्यायमें अभाव–उसे प्रागभाव कहते हैं।

प्रश्न (३१७)–प्रध्वंसाभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक द्रव्यकी वर्तमान पर्यायका उसी द्रव्यकी आगामी (भविष्यकी) पर्यायमें अभाव–उसे प्रध्वंसाभाव कहते हैं।

[प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव–दोनों एक ही द्रव्यकी पर्यायोंको लागू होते है।]

प्रश्न (३१८)–श्रुतज्ञान (वर्तमानमें) है; उसमें प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव बतलाओ।

उत्तर—श्रुतज्ञानका मतिज्ञानमें प्रागभाव है और श्रुतज्ञानका केवलज्ञानमें प्रध्वंसाभाव है।

प्रश्न (३१९)–दहीको वर्तमान पर्यायरूपमें लेकर उसका प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव समझाओ।

उत्तर—दहीकी पूर्व पर्याय दूध थी, उसमें दहीका अभाव था, इसलिये उसका प्रागभाव है; और मट्ठा दहीको भविष्यकी पर्याय है, उसमें दहीका अभाव है, इसलिये उसका प्रध्वंसाभाव है।

प्रश्न (३२०)—अन्योन्याभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक पुद्गल द्रव्यकी वर्तमान पर्यायका दूसरे पुद्गलद्रव्यकी वर्तमान पर्यायमें जो अभाव उसे अन्योन्याभाव कहते हैं।

प्रश्न (३२१)—दूध, दही और मट्ठा—यह तीन वर्तमान वस्तुएँ हैं; उनमें कितने और कौन—कौनसे अभाव हैं ?

उत्तर—तीनों पुद्गल द्रव्यकी वर्तमान पर्यायें हैं, इसलिये उनमें एक ही अन्योन्याभाव है।

प्रश्न (३२२)—छप्परको दीवारका आधार है और नलियोंको छप्परका आधार है—यह बराबर है ?

उत्तर—नहीं क्योंकि उनमें अन्योन्याभाव है। प्रत्येककी भिन्न-भिन्न सत्ता होनेके कारण सभी अपने-अपने क्षेत्रके आधारसे हैं; एक परमाणुकी पर्याय अन्य किसी द्रव्य पर आधारित नहीं है।

प्रश्न (३२३)—तैजस और कार्माण शरीरके बीच कौन—सा अभाव है ?

उत्तर—अन्योन्याभाव; क्योंकि दोनों पुद्गल द्रव्यकी वर्तमान पर्यायें हैं;

प्रश्न (३२४)—अत्यन्ताभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यमें (त्रिकाल) अभाव हो उसे अत्यन्ताभाव कहते हैं।

प्रश्न (३२५)—कुम्हार और घड़ेमें, तथा पुस्तक और जीवमें कौन सा अभाव है ?

उत्तर—[१] कुम्हार (जीव) और घड़ेके बीच अत्यन्ताभाव;

[२] पुस्तक और जीवके बीच अत्यन्ताभाव; क्योंकि—प्रत्येकमें दोनों भिन्न–भिन्न जातिके द्रव्य हैं।

प्रश्न (३२६)–जीवने सिद्ध–परमात्मदशा प्रगट की उसमें प्रागभाव बतलाओ।

उत्तर—सिद्धदशाका संसारदशामें अभाव वह प्रागभाव है।

प्रश्न (३२७)–चार अभावोंमें द्रव्य सूचक और पर्याय सूचक अभाव कौन–से हैं।

उत्तर—अत्यन्ताभाव द्रव्य सूचक है और शेष तीन—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव और अन्योन्याभाव—पर्याय सूचक हैं ?

प्रश्न (३२८)–चारों अभाव किस द्रव्यमें लागू होते हैं ?

उत्तर—पुद्गल द्रव्यमें।

प्रश्न (३२९)–प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव कितने द्रव्योंमें लागू होता है ?

उत्तर—छहों द्रव्योंकी अपनी–अपनी पर्यायोंमें।

प्रश्न (३३०)–अन्योन्याभाव कितने द्रव्योंमें लागू होता है ?

उत्तर—परस्पर पुद्गल द्रव्योंकी वर्तमान पर्यायमें ही।

प्रश्न (३३१)–अत्यन्ताभाव कितने द्रव्योंमें लागू होता है ?

उत्तर—छहों द्रव्योंमें।

प्रश्न (३३२)–इन चार अभावोंको न माना जाये तो क्या दोष आयेगा ?

[१] प्रागभाव न माननेसे कार्य अनादि सिद्ध होगा।

[२] प्रध्वंसाभाव न मानें तो कार्य अनन्तकाल रहेगा।

[३] अन्योन्याभाव न माननेसे एक पुद्गल द्रव्यकी वर्तमान पर्यायका दूसरेसे पुद्गल द्रव्यकी वर्तमान पर्यायमें अभाव है वह नहीं रहेगा।

[४] अत्यन्ताभाव न माननेसे प्रत्येक पदार्थकी भिन्नता नहीं रहेगी। जगतके सर्व द्रव्य एकरूप हो जायेंगे ।

प्रश्न (३३३)–इन चार प्रकारके अभावोंको समझनेसे धर्म संबंधी क्या लाभ होगा ?

उत्तर—[१] प्रागभावसे ऐसा समझना चाहिये कि—अनादिकालसे यह जीव अज्ञान–मिथ्यात्व और रागादि दोष नये–नये करता आरहा है; उसने धर्म कभी नहीं किया, तथापि वर्तमानमें नये पुरुषार्थसे धर्म कर सकता है; क्योंकि वर्तमान पर्यायका पूर्व पर्यायमें अभाव वर्तता है ।

[२] प्रध्वंसाभावसे ऐसा समझना चाहिये कि—वर्तमान अवस्थामें धर्म नही किया है, फिर भी जीव नवीन पुरुषार्थसे अधर्मदशाका तुरन्त ही व्यय [अभाव] करके अपनेमें सत्य-धर्म प्रगट कर सकता है ।

[३] अन्योन्याभावसे ऐसा समझना चाहिये कि—एक पुद्गल द्रव्यकी वर्तमान पर्याय दूसरे पुद्गल द्रव्यकी वर्तमान पर्यायका [परस्पर अभावके कारण] कुछ नहीं कर सकती; अर्थात् एक–दूसरेका असर, सहाय, मदद, प्रभाव, प्रेरणादि कुछ नहीं कर सकते। जब सजातिमें भी परका कुछ नहीं कर सकते; तो वे [पुद्गल] जीवका क्या कर सकेंगे ?

[४] अत्यंताभावसे ऐसा समझना चाहिये कि—प्रत्येक द्रव्य-में दूसरे द्रव्यका त्रिकाल अभाव है, इसलिये एक द्रव्य अन्य द्रव्यकी पर्यायका कुछ नहीं कर सकता, अर्थात् मदद, सहायता, असर, प्रभाव, प्रेरणादि कुछ नहीं कर सकते ।

शास्त्रोंमें अन्यका करने–कराने आदिका जो भी कथन है वह "घी के घड़े" की भांति मात्र व्यवहारका ज्ञान कराता है ।

वह सत्यार्थ स्वरूप नहीं है—ऐसा समझना चाहिये।

प्रश्न (३३४)—"ज्ञानक्रियाभ्याम्मोक्षः"—इस सूत्रका अर्थः—"आत्माका ज्ञान और शरीरकी क्रिया—इन दोनोंसे मोक्ष होता है"—ऐसा जो कहे वह किस अभावको नहीं मानता ?

उत्तर—अत्यंताभावको; क्योंकि परस्पर अत्यन्ताभावके कारण कोई आत्मा शरीरकी क्रिया नहीं कर सकता; मात्र परपदार्थ सम्बन्धी अहंकारवाली मान्यता करता है। शरीरकी क्रियासे आत्माको लाभ होता है—ऐसी मान्यतावालेको जीव—अजीव तत्त्वका अज्ञान वर्तता है।

प्रश्न (३३५)—निम्नोक्त जोड़ों में कौन—सा अभाव है ?

[१] इच्छा और भाषा, [२] चश्मा और ज्ञान, [३] शरीर और वस्त्र, [४] शरीर और जीव।

उत्तर—[१] इच्छा और भाषाके बीच अत्यन्ताभाव है, क्योंकि इच्छा जीवके चारित्र गुणकी विकारी पर्याय है, और भाषा—पुद्गलकी भाषावर्गणाकी पर्याय है।

[२] चश्मा और ज्ञानके बीच अत्यन्ताभाव है; क्योंकि चश्मा पुद्गल स्कंध है और ज्ञान जीवके ज्ञानगुणकी पर्याय है।

[३] शरीर और वस्त्रके बीच अन्योन्याभाव है; क्योंकि शरीर पुद्गलपिंड है और वस्त्र भी पुद्गलस्कंध है।

[४] शरीर और जीवके बीच अत्यन्ताभाव है क्योंकि दोनों भिन्न द्रव्य हैं।

प्रश्न (३३६)—कुम्हारने चाक और दंड द्वारा घड़ा बनाया—ऐसा निश्चयसे माननेवालेने किस अभावकी भूल की ? और उसमें क्या दोष हुआ ?

उत्तर—घड़ेका चाक और दंडमें अन्योन्याभाव है, तथा कुम्हार

और घड़ेके बीच अत्यन्ताभाव है। वह इन दोनों अभावोंको भूल जाता है, इसलिये दो द्रव्योंमें एकताबुद्धिरूप मिथ्यात्व होता है।

प्रश्न (३३७)—वर्तमानमें सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ; उसमें जो अभाव लागू हो वह समझाओ।

उत्तर—सम्यग्दर्शनपर्यायका मिथ्यादर्शन पर्यायमें **प्रागभाव**, और तत्पश्चात् श्रद्धा गुणमेंसे नई-नई पर्यायें हो उनमें वर्तमान सम्यग्दर्शन पर्यायका अभाव—वह **प्रध्वंसाभाव है**।

[शरीर, द्रव्यकर्म, देव, गुरु, शास्त्रादि सर्व पर पदार्थोंमें उस सम्यग्दर्शन पर्यायका अत्यन्ताभाव है, अर्थात् शरीर द्रव्य-कर्मादिसे सम्यग्दर्शन पर्यायकी उत्पत्ति नहीं है।]

प्रश्न (३३८)—घातिकर्मके (ज्ञानावरण कर्मके) नाशसे केवलज्ञान होता है—यह मान्यता ठीक है?

उत्तर—नहीं क्योंकि कर्म और ज्ञानके बीच अत्यन्ताभाव है। जीव जब शुद्धोपयोग द्वारा केवलज्ञान दशा प्रगट करे तब घाति द्रव्य कर्मका स्वयं आत्यन्तिक क्षय होता है। घातिकर्मके (ज्ञानावरण कर्मके) क्षयसे केवलज्ञान होता है—यह तो निमित्तका ज्ञान करानेके लिये व्यवहारनयका कथन है।

प्रश्न (३३९)—आत्मा परका कार्य कर सकता है—ऐसा माननेवाले-ने कौनसा अभाव तथा कौन-सा गुण नहीं माना?

उत्तर—अत्यन्ताभाव और अगुरुलघुत्व गुणको नहीं माना।

प्रश्न (३४०)—कर्मोदयसे जीवको मिथ्यात्व और रागादि होते हैं—ऐसा सचमुच माननेवाला किस अभावको तथा किस गुणको भूलता है? और उसका कारण क्या?

उत्तर—वह अत्यन्ताभाव और अगुरुलघुत्व गुणको भूलता है, क्योंकि

एक द्रव्यका (कर्मका) दूसरे द्रव्यमें (जीवके मिथ्यात्वादि भावोंमें) अत्यन्ताभाव होनेसे कर्मोदयके कारण जीवमें कोई विकार नहीं हो सकता। कर्मोदयसे जीवको विकार होनेका कथन आये वहाँ समझना चाहिये कि—"ऐसा नहीं है" लेकिन निमित्तका ज्ञान करानेके लिये वह व्यवहारका कथन है; निमित्तसे उपादानका कार्य होता है ऐसा ज्ञान करानेके लिये वह कथन नहीं है।

प्रश्न (३४१)–कर्मके उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षयसे जीवमें सचमुच (निश्चयसे) औदयिक औपशमिकादिभाव होते हैं–ऐसा माने वह किस अभावको तथा किस गुणको भूलता है?

उत्तर—वह अत्यन्ताभाव और अगुरुलघुत्व गुणको भूलता है। (विशेष स्पष्टीकरणके लिये देखो,प्रश्न नं० ३४०का उत्तर।)

प्रश्न (३४२)–शरीरकी क्रियासे (व्रत, उपवास, पूजादिमें होनेवाली शरीरकी क्रियासे) मोक्षमार्गकी साधना होती है–ऐसा माननेवाला किस अभावको भूलता है?

उत्तर—शरीरकी क्रिया पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है और मोक्षमार्ग जीव द्रव्यकी पर्याय है; उन दोनोंके बीच अत्यन्ताभाव है; उसे वह भूलता है।

मोक्षमार्ग स्वद्रव्याश्रित शुद्धपर्याय है, इसलिये स्वद्रव्यके आश्रयरूप एकाग्रतासे ही मोक्षमार्गकी साधना हो सकती है। जहाँ वीतरागभावरूप सच्चा मोक्षमार्ग हो वहाँ बाह्य—नग्न निर्ग्रन्थदशा तथा महाव्रतादि २८ मूलगुणोंके जो विकल्प उस भूमिकामें सहचररूपसे होते हैं वे निमित्त कहलाते हैं।

प्रश्न (३४३)–निमित्तसे वास्तवमें नैमित्तिक (कार्य) होता है—

ऐसा माननेवाला किस अभावको भूलता है ?

उत्तर—(१) किसी भी एक जीवके निमित्तसे वास्तवमें दूसरे जीव-का कार्य होना माने अथवा जीवके निमित्तसे पुद्गलका (शरीरादिकका) कार्य होना माने वह अत्यन्ताभावको भूलता है। (२) एक पुद्गल अथवा अनेक पुद्गलोंकी पर्यायोंके निमित्त से वास्तवमें दूसरे पुद्गलोंकी पर्यायें होती हैं—ऐसा जो मानता है वह अन्योन्याभावको भूलता है।

प्रश्न (३४४)—आत्माका ज्ञान वह निश्चय और शरीरकी क्रिया करना वह व्यवहार—ऐसा माननेवाला किस अभावको तथा किस गुणको भूलता है ? वह साततत्त्वोंमें किस भेदको नहीं मानता।

उत्तर—(१) वह अत्यन्ताभाव और अगुरुलघुत्वपनेको भूलता है। (२) शरीर पुद्गलपरमाणु द्रव्यकी अवस्था होनेसे उसकी क्रिया (अवस्था) जीव कर सकता है—ऐसा माननेवाला सात तत्त्वोंमेंसे जीव और अजीव तत्त्वकी भिन्नताको नहीं समझता।

प्रश्न (३४५)—जीव परद्रव्य—क्षेत्र—काल—भावको अनुकूल अथवा प्रतिकूल मानता है तो वह किस अभावको भूलता है ?

उत्तर—वह अत्यन्ताभावको भूलता है।

प्रश्न (३४६)—इससे वास्तवमें समझें क्या ?

उत्तर—कोई भी परद्रव्य—क्षेत्र—काल—भाव किसी जीवके लिये अनुकूल या प्रतिकूल हैं ही नहीं, वे तो मात्र ज्ञेय ही हैं। वास्तव में अज्ञान राग—द्वेषरूप मलिनभाव जीवको अपने लिये प्रतिकूल हैं; व निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान और वीतरागभाव ही अपने लिये अनुकूल हैं।

* * *

शुद्धि पत्र

पृ०	लाइन नं०	अशुद्धि	शुद्धि
५३	६	सदेव	सदैव
५६	६	आधार	अपराध
९९	२४	दूसरे से	दूसरे